लेखक :

आगम श्रद्धालु

*

(प्रकरण ८-९-१०-११ का)

लेखक :

शान्तीलाल वनमाली शेठ

: मुद्रक : मुद्रणस्थान :

जयंतिलाल देवचंद महेता

ज य भा र त प्रे स

शाक मारकेट पासे-राजकोट.

वीर संवत २४८५

विक्रम संवत २०१५

: प्र थ म सं स्क र ण :

प्रत : १००० एक हजार

लगी हुई कींमत २-८-०

आधी कींमत १-४-०

अनुक्रमणिका.

: फोटा :



निवेदन ।

प्रिय पाठक ! यों तो तूने जीवनचरित्र आदि की अनेक पुस्तके पढ़ी होंगी; किन्तु ऐसे विषम काल में एक बाल ब्रह्मचारी महामुनि के अतिलाभदायी एवं पठनीय जीवन चरित्र को पढ़नेका आज तुम्हें अमूल्य अवसर प्राप्त हुआ है, यह एक अनूठा भाग्य है । पुस्तक को पढ़कर पाठक कृतार्थ हों, यह लेखक का अभिलाष है ।

ग्रन्थ की विशिष्ठता ।

सुपुत्रों ने माँ-बाप की सेवा-पूजा की हो, ऐसे अनेक उदाहरण अवनि में पाये जा सकते हैं, किन्तु इस पुस्तक का कथानायक, माँ-बाप को अपनी सेवा करने के लिए आकर्षित कर रहा है । वह तो मातृकुक्षि का परमरत्न है । कुलदीपक है !! उसने अपनी आत्मा को वैराग्यगृह में प्रविष्ट किया है !!! उसने अपने जीवन को आगमानुकूल बनाकर, उन आगमगत सिद्धान्तों को जीवन में दृढ़ीभूत करने के लिए भगीरथ प्रयास किया है, और वह धन्य बन गया ।

ऐसे बाल ब्रह्मचारी मुनिके जीवनचरित्र में से जिन जिन घटनाओं को प्रकाश में लाया गया है, उन में ज़रा भी अतिशयोक्ति नहीं है । अक्षरशः सत्य घटना है । सूक्ष्मदृष्टि से इस का अध्ययन करने वाला एक विज्ञानस्वरूप महापुरुष का दर्शन पा सकता है ।

पाठकगण को इस अद्भुतरसमय जीवनचरित्र पढ़ने के साथ ही साथ, आत्मा में शास्त्रोक्त अलंकार भी सिद्ध होंगे ।

आगम श्रद्धालु

गोण्डल-सम्प्रदाय के पूज्य आचार्य श्री १००८ श्री पुरुषोत्तमजी महाराज का

— प्रमाण पत्र —

इस ग्रन्थ के लेखक महाशयने, श्री विनोदकुमार का जीवन-चरित्र, जिस रीति से लिखा है, उस में लेखक महाशय को कथा-नायक का ज़्यादा परिचय न होने से, लेख में न्यूनता या अधिकता का दोष संभाव्य है; तथापि मुझे जरूर यह कहना चाहिए कि, जिन सिद्धान्तों से समन्वित, विनोदकुमार का जीवन था, उन को लक्ष्य करते हुए—नोआगमज्ञ (जाणग) शरीर, भव्यशरीर और नैगमनय के आरोपांशों को ध्यान में रखते हुए—यदि यह ग्रन्थ पढ़ा जाय, तो ज़रा भी अतिशयोक्ति मालूम होने की संभावना नहीं रहती।

वेरावल में मेरे साथ रहकर, रात-दिन धार्मिक सूत्रों का अध्ययन करते समय, उनके गुण का परिचय हुआ कि, उनकी सिद्धान्त के प्रति अचल श्रद्धा है। दृष्टान्त रूप में, मैं जब दश-वैकालिक का चतुर्थ अध्ययन सार्थ पढ़ा रहा था, उस समय उनका सविनय हर्षोल्लास, एवं उत्साह अवर्णनीय था।

विनोदमुनि में सरलता, विनय, नम्रभावना, मन्दकषाय संसार की ओर अरुचि आदि गुण इतनी अधिक मात्रा में थे कि वे प्रत्यक्ष दीख पड़ते थे मेरी देखने की रीति भी सही थी। वैराग्यभावना से प्रेरित होकर, स्वयमेव उन्होंने दीक्षा ली, और वह भी बड़ी दूर जाकर, कि जहाँ किसी भी प्रकार के विघ्न की उपस्थिति न हो, और किसी को मालूम भी न पड़े—यही उनकी दीक्षांगीकार की उत्कृष्ट भावना का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

वे मुझसे अक्सर कहा ही करते थे कि शीघ्रातिशीघ्र जगद् बन्ध विच्छिन्न करने का मैं उनके लिए प्रयास करूँ, और आत्मकल्याण कर्त्री पावनकारिणी महती दीक्षा दूं, ताकि वे कर्मक्षय कर, अनन्त आत्मीय सुखप्राप्ति करें—इस प्रकार की उन की दीक्षाप्राप्त्यर्थ अविरत याचना रहा ही करती थी।

*

आदर्श बताकर चले गये तुम

ओह विनोद मुनि क्यों आये चले गये तुम ॥

नन्द-धाम में पले हुए थे,
सुख वैभव में बढ़े हुए थे।
फूल गुलाबी खिले हुए थे,

ओह नव दीक्षित हंसा रुला कर चले गये तुम ॥

शीघ्र प्राप्त कर सत्य सार तुम,
मोह माया का तोड़ तार तुम,
स्वयं दीक्षा सोल्लास धार तुम,

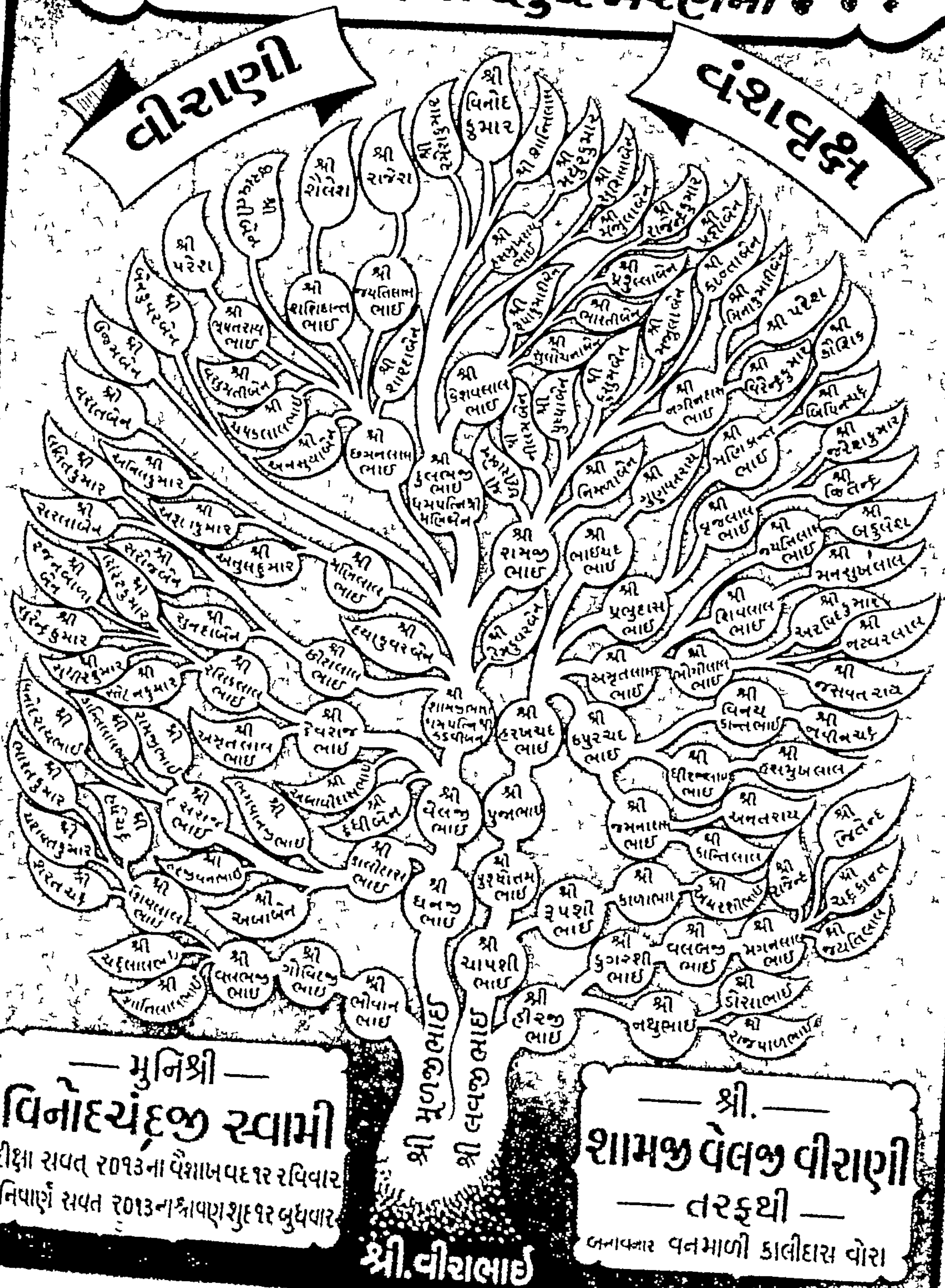
ओह त्यागी वीर सौर फैला कर चले गये तुम ॥

कैसा था वैराग्य तुम्हारा,
कैसा था चारित्र तुम्हारा।
कैसा था सौभाग्य तुम्हारा,

[illegible] मुनि आदर्श बताकर चले गये तुम ॥

પ્રાત:સ્મરણીય બા. બ્ર. મુનિશ્રી વિનોદચંદ્રજી

• • • • સ્વામીના સ્મરણમાં • • •



प्रस्तावना

"वैराग्यमूर्ति विनोदमुनि"—यह शब्द प्रयोग, मुझे कुछ हद तक असमंजस में डाल देता है। विनोदकुमार को—मेरे बन्धुतुल्य दुर्लभजी भाई के पुत्र को क्या मैं मुनि कहूँ? क्या मैं विशेषण दे सकता हूँ भला? पर हाँ, भारतीय संस्कृति का यही सौजन्य है। उस संस्कृतिने शारीरिक या सामाजिक सम्बन्धों एवं वय आदि अन्याय योग्यताओं को उचित महत्त्व देते हुए भी श्रेष्ठता तो वैराग्य में ही स्थापित की है। जिसने वैराग्य धारण किया है, उसके चरणों में भारतीय समाज का मस्तक नत होता ही रहा है।

परन्तु सोचता हूँ कि वह भारत तो प्रबल वेग से परिवर्तनशील होता जा रहा है। पाश्चात्य पवन की लहरें भारत की संस्कृति के इन मूल्यों और अन्यान्य मूल्यों को आकाश के बादलों की तरह न जाने कहाँ से कहाँ घसीटकर ले जा रही हैं? यही कारण है कि खुद भारतीय मानस भी इन मूल्यों की यथार्थता के सम्बन्ध में सचमुच ही साशंक बन गया है! युगप्रभाव और संस्कारप्राबल्य, भारतीय मूल्यों की अंतर्निहित शक्ति का मुकाबिला कर रहे हैं! परिणाम तो ईश्वराधीन है, और जिस किसीने भारतीय संस्कृति का इतिहास जाना—पहचाना है, वह अभी भी आशा की नजरों से देख रहा है।

लेखक ने वैराग्यमूर्ति विनोदमुनि की आत्मस्फुरणा एवं मनोमन्थन का चित्रांकन करने का प्रयास किया है। मेरे पूर्वकथनानुसार, आधुनिक भारत को, और आज के भारतीय युवक की मनोदशा को कहाँ तक मान्य है? अथवा मान्य हो तो भी उसकी यथार्थता के सम्बन्ध में कहाँतक विश्वास है?

मैं इस विषय मे केवल रूढि को लेकर विचार करनेवाला विचारक नहीं हूँ। वैराग्यमूर्ति विनोदमुनि की मनोवेदना और उनके संकल्प को रूढिगत रीत्या समर्थन देकर, उनकी पुण्यस्मृति को तेजोविहीन बनाना मैं नहीं चाहता।

कुछ घटनाओं में धनसम्पत्ति पुरुषार्थ के परिणाम का रूप लेती होगी, पर वह पुरुषार्थ के लिए प्रेरकशक्ति तो कदापि नहीं है। आज पूँजीपतियों के अनेक पुत्रों को साम्यवाद के मार्ग पर जाते हुए मैं देख रहा हूँ, तब मेरे दिल में उनके प्रति सहानुभूति उत्पन्न होती है। मनुष्य की सच्ची खुराक तो भावनात्मक क्षेत्र के ऊपर प्रेरणात्मक जीवनदर्शन ही है; और उसकी भूख ग़रीबों को जिस हद तक नहीं मालूम पड़ती, उस से कुछ अधिक मात्रा में, बहुधा धनसम्पन्न मनुष्यों, और खास करके उनके परिवार के युवान अंग को मालूम पड़ती है। ग़रीबी खुद ही समझदार आदमी के लिए पुरुषार्थ का कारण बन जाती है। उस से दूर भागनेवाला यह नहीं समझता कि, अपने पुरुषार्थ की कसौटी करने की कैसी अपूर्व वेला सामने आकर खड़ी है। वह अनिमन्त्रित समय साक्षात् और मूर्तिमन्त स्वधर्म है। भारत को अद्यतन पुरुषार्थ की घड़ी में तो ग़रीब-अमीर-सभी के लिए राष्ट्रधर्म भी है। जिस प्रकार धनसम्पन्न परिवार के पुत्रों का साम्यवाद की ओर झुकाव, प्रेरणात्मक जीवनदर्शन के अभाव में से उत्पन्न हुआ है, ठीक उसी प्रकार, जिस कुटुम्ब में ज़्यादा ज़ोर धार्मिक सस्कारों के ऊपर दिया जाता है, वहाँ झुकाव धार्मिक उन्नति की ओर होता है। फलतः इस के पीछे प्रेरणात्मक जीवन दर्शन की भूख ही है।

लेकिन भारतवर्षने वैराग्य को इतना महत्त्व क्यों दिया?

आज के युग में उसका क्या अर्थ है, यह दूसरा प्रश्न है। सच पूछा जाय, तो एक ही महाप्रश्न के ये दो प्रश्न, दो पहलू हैं। मानव का सर्जन, सिर्फ रोटीका गुलाम बनने के लिए नहीं हुआ। उसकी विशिष्ट शक्तियों के विकास के साथ, इस वैराग्य की कल्पना का सम्बन्ध है। ईश्वरने जिन अपूर्व शक्तियों को मनुष्य में रखा है, उनका ज्यों ज्यों विकास होता है, त्यों त्यों इस मार्ग पर प्रकाशाधिक्य होता रहता है। जिस प्रकार जन्मान्ध व्यक्ति को अलग अलग रंगो की कल्पना नहीं होती, और ज्ञान नहीं होता, ठीक उसी प्रकार रागद्वेषपूर्ण हमारे जीवन को भारतीय संस्कृति की इस श्रेष्ठ देन की पूरी कल्पना नहीं है, पूरा ज्ञान भी नहीं है। वैराग्य, जीवन का इन्कार करनेवाला नहीं, प्रत्युत संपूर्णतया विकसित जीवन का सौन्दर्य है आभूषन है। मनुष्य जब इन्द्रियों के स्तर पर से सोचना बन्द कर देता है, तब उस के सामने बुद्धियुक्त पुरुषार्थ का चित्र खड़ा होता है। जब वह बुद्धिकी सीमाएँ पार कर लेता है, तब आन्तरस्फुरणा (INTUITION) जाग्रत् होती है। जिस प्रकार बन्द आँख खुलने से पूर्व अगोचरीभूत वस्तु देखी जा सकती है, जिस प्रकार बधिरता का नाश होने से पूर्वाश्रुत (अश्रुतपूर्व) स्वरों को सुना जा सकता है, ठीक उसी प्रकार एक स्तर को पार करके दूसरे स्तर पर पहुँचनेवाला है। यदि कोई मनुष्य जन्मान्ध है—उसे दृष्टि प्राप्त नहीं हुई, इसलिए उसका यह मानना कि जगत का रंग काला है, बड़ी गल्ती का ही परिचायक है, जन्म से बधिर का यह मानना कि यह जगत मौन चलचित्र जैसा है, यह भी उसी प्रकार की क्षति है, ठीक इसी तरह इन्द्रिय या तर्क के स्तर पर खड़े रहकर जागतिक विचार करते हुए वैराग्य का न्याय करना यथार्थ नहीं है।

मानव के विकास की भूमिका अलग अलग होती है। इन्द्रिय के स्तर पर से जीवन के सुखदुःखों को देखनेवाला या केवल तर्कोपलब्ध सुखदुःखों के ख़यालों से सोचनेवाला, वैराग्य के विषय में सही निर्णायक नहीं माना जा सकता।

भारतीय जीवनदर्शन की नींव कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं, जो शताब्दियों के अवलोकन, प्रथक्करण और समन्वय से निकले हैं। उनको पानेवाली विभूतियाँ उच्च स्तर पर खड़ी थीं, जो स्तर हमारा नहीं है। हम उनकी आकलना की आलोचना करने के अधिकारी नहीं हैं, ऐसा मेरा नम्र अभिप्राय है, और इसी से मैं अपनी स्तर कक्षा में रहकर अपनी कल्पना के सुखदुःखों को ही समझ सकता हूँ, और उनकी मर्यादाओं को भी यथार्थ समझ सकता हूँ, मेरी श्रद्धा इसी प्रकारकी है। उन लोगों ने उस स्तर पर पहुँचने के लिए तपश्चर्या करने में न्यूनता नहीं रखी थी महारथियों और अतिरथियों की वीरता भी उनकी वीरता के आगे तेजोहीन बन जाए, ज्वाजल्यमान बुद्धिमत्ता भी उनकी वीरता के आगे अपना सर झुकाए, अमरतम शहीदकी शहीदी, उनकी शहादत के आगे तुच्छ बन जाए, ऐसी उन विभूतियों के प्रसादरूप ये सिद्धान्त, भारतीय समाज के पास पड़े हैं क्या हम उस प्रसाद मे से श्रद्धापूर्वक कुछ पा सकते हैं ?

मैं जानता हूँ कि युगप्रवाह दूसरी ही दिशा की ओर बह रहा है, मै यह भी समझ रहा हूँ कि आज का युग, आज के प्रश्नों को आज की परिस्थिति में और समाज की आज की स्तर कक्षा में रहाकर ही सोच सकता है, किन्तु यदि मेरी गलती न हो, तो मैं कह सकता हूँ कि अद्यतन युग के प्रारंभ से ही— साथ ही साथ उसकी कसौटी के प्रारम्भाक्षर के साथ ही; घुन का भी श्रीगणेश हो चुका है—भयानक अन्दरूनी पोल भी जन्म

ले चुकी है, ऐसा इस युग के सर्जकों को भी मालूम पड़ गया है। केवल पोल ही नहीं, उस भयानक गह्वर में भयानक कद्रूप राक्षसी स्वरूप भी उत्पन्न हो चुके हैं, जो कि समाज को चारों ओर से खा जाने के लिए मुँह फाड़कर गर्जना करते हुए प्रतीत हो रहे हैं। युगप्रवाह की परीक्षा में से समय का सवाल है, उस प्रकार मानव समाज की अस्ति–नास्ति का सवाल भी विचार को न्यौता दे रहा है, और मानव जाति का यह सौभाग्य है कि उस के सम्बन्ध में विचारणा हो भी रही है। किसी भी समाजका नेतृत्व, युगप्रवाह के व्यापक असरों को सोचे विना रह नहीं सकता। जो मूल्य युगप्रवर्तकों के जरिये समाज को प्रेरणा देने के लिए होते हैं, उनका विचार, सिर्फ मानवता के दोनों घटकों के हिताहित की दृष्टि से ही नहीं होता, या सिर्फ युगप्रवर्तकों के जीवनकालावच्छिन्न परिस्थिति की दृष्टि से भी नहीं होता। हज़ारों वर्षों तक जिनके फल समाज द्वारा भोग्य हों, उन तत्त्वसिद्धान्तों की विचारणा के लिए विश्वव्यापी और त्रिकालगामिनी दृष्टि की अनिवार्य आवश्यकता है। ये ही मूल्य समाज की रचना, रक्षा और संगठन के लिए हितकर सिद्ध हो सकते हैं।

दूसरा भी एक प्रश्न है, और उसका सम्बन्ध वर्तमान समय में वैराग्य की यथार्थता से है। जब इस वस्तु का विचार करता हूँ, तब मेरे सामने वैराग्यमूर्ति विनोदमुनि आते हैं। मनुष्य के जीवन का प्रारंभ, मनुष्य के जन्म ही से नहीं होता, और मृत्यु से जीवन का अन्त नहीं होता। सूक्ष्म भावनाएँ और सूक्ष्म संस्कार मनुष्य के साथ संगति करते ही रहते हैं। श्री दुर्लभजी भाई के यहाँ, विनोदमुनि का जन्म, इन संस्कारों का परिपाक था। आज भी श्री दुर्लभजी भाई के पिता स्वर्गीय शामजी भाई का प्रतिभा सम्पन्न, तेजस्वी और धर्मनिष्ठ व्यक्तित्व, मेरे सामने खड़ा होता है। लाखों की सम्पत्ति के

बीच, धर्मसंस्कार किस प्रकार बड़ा युद्ध खेल सकते हैं, वह शामजी भाई वीराणी के कुटुम्ब में मैं देखता था। अत्यन्त सादी रहन-सहन, स्वधर्म दृष्टि से व्यापार करने की वृत्ति, मुसीबतों में सहायता करने की भावना और तदुपरान्त जैन-धर्म की कड़ी धार्मिक शिस्त का पालन। श्री दुर्लभजी भाई की पत्नी की अपनी सास की एकनिष्ठ सेवा भी मेरी नज़रों में आती है। श्री दुर्लभजी भाई की खुदकी धार्मिक वृत्ति भी मेरे सामने आती है। अपने संस्कारों की पूँजी को, इन संस्कारों का समर्थन मिला, और कई जन्मों के ऋणानुवन्धयोग शुष्क होकर विकीर्ण हो गये।

वैराग्य के लिए जिस प्रकार परिपक्व दृष्टि अनिवार्य हैं, उसी प्रकार अनुकूल वातावरण भी पोषक बनता है। उनको दोनों प्राप्त हुए, और उन्होंने धर्ममार्ग में प्रयाण किया।

मैंने ऊपर कहा कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है परोक्ष रीति से संस्कारिता वहती ही रहती है, और उस के स्वच्छ जल, सदाचार और स्वच्छता की प्रेरणा दे सकते हैं मलिन जल रजस् और तमस् को प्रेरणा दे सकते हैं। इस संस्कारिता का आगममार्ग हमारे पास नहीं है, किन्तु मनुष्य की उत्कृष्ट इच्छा पर से, उस के वेग को नापा जा सकता है; और उसके स्वच्छ निर्मल व्यवहार पर से उस के जल की निर्मलता का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

और तो क्या लिखूँ मैं ? उस नवयुवान मुनि के जीवन प्रवाह, उन के आसपास के जनसमुदाय और संसार के छीछले व्यवहारों के नीचे-गहराई मे, जो सनातन सिद्धान्त पड़े हैं, उनका संशोधन करने की हमें प्रेरणा दें।

—ढेबरभाई

श्री विनोदमुनि ने दिनाङ्क २३–५–'५७ के रोज़ भागवती दीक्षा का अङ्गीकार किया, और चिरंजीव शान्तिभाई ने दिनाङ्क १७–६–'५७ के रोज लग्नदीक्षा ली।

ये दोनों भिन्न प्रकारकी दीक्षाएँ होते हुए भी स्वधर्म दीक्षाएँ ही मानी जा सकती हैं–इस भाव को सूचित करता हुआ श्री ढेबरभाइ का तारसन्देश हम सादर पेश करते हैं:–

DT. 17-6-57

XRF NEW DELHI 15 82 VINOD, RAJKOT

I SEND MY BEST WISHES FOR THE HAPPINESS AND PROSPERITY OF SHANTIBHAI AND HIS WIFE STOP THERE IS AN UNSEEN HAND OF GOD AT WORK EVERYWHERE STOP HE GUIDES US ALL STOP HE GUIDED VINOD IN ONE DIRECTION STOP THAT BECOMES HIS SWADHRMA STOP HE GUIDES SHANTIBHAI IN ANOTHER THAT IS ALSO HIS SWADHRMA STO' MAY BOTH FIND HAPPINESS AND SATISFACTION IN BEING IN IDEAL COUPLE CULUTURALLY SPIRITUALLY AND EVERY OTHER WAY STOP MY LOVE TO ALL-DHEBAR.

तार का हिन्दी अनुवाद

न्यू देहली

चिरंजीव शान्तिभाई और उनकी अ. सौ. धर्मपत्नी स्मिता बहन के योगक्षेम के लिए मैं अपनी कल्याणकामनाएँ पेश करता हूँ।

ईश्वर के अदृश्य हाथों का सर्वत्र प्रभाव प्रवर्तमान है, वही हम सब को मार्गदर्शन देता है।

उसी शक्ति ने श्री विनोदमुनि को एक दिशा में प्रेरणा दी, और वही शक्तिजन्य प्रेरणा उन का स्वधर्म बन गई।

वही शक्ति, चि. शान्तिभाई को अन्य दिशा में प्रेरणा दे रही है और वह शान्तिभाई के लिए स्वधर्म बनी है।

चि. शान्तिभाई और अ. सौ. स्मिताबहन सांस्कारिक दृष्टि से आध्यात्मिक दृष्टिसे और इतर दृष्टि से आदर्श दम्पती बनें।

सभी से मेरे प्रेमस्मरण। –ढेबर

श्री डॉ एन. के. गाँधी की बालब्रह्मचारी मुनि श्री विनोदमुनिजी को श्रद्धाञ्जलि और ग्रन्थ के विषयमें अभिप्राय।

मुनि श्री विनोदमुनिजी का जीवन चरित्र मैंने देखा। लेखक को उनके परिश्रम के लिए धन्यवाद देता हूँ। मालूम पड़ता है कि लेखकने जैनधर्म का अच्छा अभ्यास किया है। जैनत्व और शुद्ध आत्म धर्म की ओर ज़्यादा सूक्ष्म दृष्टि के अभ्यास यदि वे करेंगे तो उनकी आत्मा का कल्याण हो सकता है। जैनदर्शन सर्वज्ञप्रणीत और सर्वथा स्वतंत्र होने से एवं मुनिश्री जैनागमानुरागी और अगाधश्रद्धावान होने से, उन्हीं सिद्धान्तों को प्राधान्य देकर उन्हीं का अवलम्बन किया है।

श्री विनोदकुमार मुनि, संसारी अवस्था के अन्तिम कुछ वर्षों में मेरे पास अक्सर आया करते थे। उनको यों तो मूल में पूर्व भव का संस्कार था ही; इस लिए सत्यान्वेषण में मग्न रहते थे। और पहले संयमपालन संभाव्य है, क्योंकि उनमें त्यागभावना का प्राचुर्य था, और वह बढ़ती ही जा रही थी; किन्तु धर्म और परोपकार के व्याज से आश्रवयुक्त और अविवेकिक मिथ्यात्व की असमंजस में डालनेवाली जालों से युक्त वातावरण उन्हें क्षोभ उत्पन्न करता था। फिर भी हारने की बजाय—उन में फँस जाने की बजाय—वे उनको सुलझाते रहते और उस क्रिया में उन्हें जो आनन्द आता, उसे देखकर मुझ में भी आनन्द और वात्सल्यभाव प्रकट होता था। इसी से उनकी इच्छा के अनुसार सर्वदा मैं चर्चा के लिए तैयार रहता था। गुरु की और श्रद्धा की परीक्षा करने की कोटियाँ उन्होंने अच्छी तरह से जान ली थीं। सभी सूत्रों के विना पढ़े ही किसी भी लेख या चर्चा में सत्यासत्यविवेक वे पा सकते थे।

अपने को विद्वान और शास्त्रज्ञ कहलाने वाले लोग जो गलतियाँ कर बैठते हैं, उन्हें वे पकड़ सकते थे; और उनका शास्त्रानुकूल निराकरण भी प्राप्त कर लेते थे। उन्हींने ही 'सम्यग्दर्शन और अध्यात्मज्ञान' की पुस्तक प्रकाशित करने के लिए अपने पिताजी को प्रेरणा दी थी।

श्रद्धा के विषय में गुणस्थान ४ से १२ तक एकत्व हो सकता है; अतः श्रद्धा के सम्बन्ध में मेरा उनपर बहुत मान था। मेरी बुद्धि के अनुसार, दिवंगत महाराज श्री अमुलखऋषिजी, दि. ग. महाराज श्री काशीरामजी, दि. ग. श्री हाथीजी महाराजजी, एवं विराजमान श्री समर्थमल्जी महाराज तथा श्री. पुरुषोत्तमजी महाराज आदि महाराजों और श्री रतनलालजी डोशी आदि श्रावकों की श्रद्धा उच्च कोटि की मानी जा सकती है। ठीक उसी प्रकार की श्रद्धा श्री विनोदमुनिजी की भी थी।

उन्होंने साधु का प्रतिक्रमण आदि कुछ क्रियाएँ संसार में रहकर सीखी थीं। मृगापुत्र के अध्ययन में से परिषहों को जीतने का धैर्य, उन्होंने हस्तगत कर लिया था। नमिराजर्षि प्रत्येक बुद्ध के अध्ययन में से सम्बन्धियों के मोहबन्धनों का त्याग उन्होंने सीख लिया था। पंचम आरा के श्रीमती भद्रा सेठानी के पुत्र एवन्ता मुनिकी सज्झाय पर से स्वयमेव दीक्षा का अंगीकार करने का उन्होंने पहचान लिया था।

आचार्य पदवी को अलंकृत कर, सौराष्ट्र के असंख्य जीवों का उद्धार करनेवाले वे हो जायँ, इस रीति से उन्हें समर्थ बनाने का अभिलाष था; पर पाँच समवाय में अविभाव भी सहचारी ही रहता है। उपलेटानगर में यकायक रात्रि में उदरपीड़ा शुरू हुई। पेट पर हाथ देकर वे बैठ गये। मुझे लगा कि उन्हें RENAL COLIC (रेनल कॉलिक) जैसा कुछ हो गया है, तब मैंने सूचना दी थी कि इसका योग्य निराकरण करना चाहिए, यहाँतक आग

और पानी से दूर रहना जरूरी है कि जिससे रोगातिरेक न हो; और ऊँची जगह में ख़ास ख्याल रखना चाहिए ताकि गिरने से हानि न हो। क्यों कि दर्द की सख्ती के समय में शरीर पर काबू नहीं रखा जा सकता। परन्तु उन्होंने दर्द की उपेक्षा की, और अपनी ज़िन्दगी का कोई भरोसा न होने से, एवं हलुकर्मी और अविभाव होने से त्याग मार्ग में ही अपने पुरुषार्थ का विकास किया।

दीक्षा में विघ्न न आए, इसलिए वे किसी से कहे विना मारवाड़ चले गए, और पहले से चुने हुए गुरुओं में से एक गुरु का आश्रय लेकर स्वयमेव दीक्षा-ग्रहण कर लिया, और यथाशक्य अपने पुरुषार्थ को चारित्र्यसम्पादन में कार्यान्वित किया। संयमपालन के साथ जब ज़रूरत आ पड़ीं तब गायों को अनुकम्पा से रेल्वे अकस्मात् से बचाने के लिए प्रयत्न किया। गायों को तो वे बचा सके, किन्तु रजोहरण लेने के लिए जाते हुए रेल्वे अकस्मात् हुआ, और अन्तर्मुहूर्त में स्वर्गवासी हुए।

उनको सांसारिक भोगों के ऊपर तो मोह नहीं था, और कषाय तो पहले ही से पतले बन चुके थे। इस भव की मान-प्रतिष्ठा पर उन्हें मोह नहीं था, इसलिए उनकी जघन्य लेश्या लें, तो भी तेजोलेश्या ही हो सकती है। इसलिए शास्त्रदृष्टि से देखते हुए, उनकी गति देवलोकवासी देवमयी-तत्स्वरूप हो, यह निर्विवाद है। और ऐसे हलुकर्मी जीव एकावतारी हों, उसमे कोई आश्चर्य नहीं है। किसीको यह प्रश्न हो सकता है कि ऐसे जीवों का ऐसा करुण अवसान क्यों होता है? उसका उत्तर यह है कि हरएक जीव को चारों गति के कर्मफल होने का सम्भव है, और हज़ारों या करोड़ों भव के कर्म भी सत्ता में होने की संभावना है। अबाधाकाल पूर्ण हो, और निमित्त मिलने के मुताबिक़ कर्म उदयावस्था में आते हैं। और जिसे

क्षमो ही प्राप्त करना है, उसे भी कर्म तो एक या दूसरी रीति से भुगतकर खपाने ही पड़ते हैं। विपाकोदय आने के योग्य कर्म हों, तभी अकस्मात् या मरणान्तिक आ पड़ता है। इसके उदाहरण स्वरूप में हम गजसुकुमालजी को ले सकते हैं। ऐसे अन्य उदाहरण भी सूत्रों मे से मिल सकते हैं।

गजसुकुमाल मुनि की आयु छोटी थी और सत्ता में कर्म ज्यादा थे। उनको पूर्णरूप से भुगत जाने के सिवा मोक्ष किस तरह से प्राप्त हो सकता था! तब जाकर अग्नि का मरणान्तिक उपसर्ग मनुष्यकृत प्राप्त हुआ और उन्होंने मोक्ष की प्राप्ति की। विनोदमुनि की सत्ता में भी कर्म होने ही चाहिएं ऐसा न हो, तो आयुष्य अल्प होते हुए भी अकस्मात् प्राप्त नहीं हो सकता था। इसलिए उन्होंने हज़ारों भव के कर्म, एक ही अकस्मात् से संयम में रहकर भुगत डाले। इससे अनुमान किया जा सकता है कि अब वे शीघ्रातिशीघ्र मोक्षगमन करेंगे।

अब श्री विनोदचन्द्रजी की आत्मा विनोददेव, अपने देवत्व रूप में भी जैनशासन का रक्षण करे, और वहां से यथाशीघ्र मोक्षगमन करे इसी भावना के साथ एन. के गांधी की श्रद्धाञ्जलि।

कविलोग कहते हैं कि –

माता! दो तुम भक्तजन, या दाता या शूर;
बिना रत्न वन्ध्या रहो, पर मत गँवाओ नूर।

यहाँ श्री विनोदकुमार मुनि में तीनों गुण थे; क्यों कि परिषह सहन करने में शूर ही सच्चे शूर हैं। इसलिए श्री. विनोदकुमार मुनि के साथ उनको संसारपक्ष की माताजी श्रीमती मणिबहन भी स्मृति की मर्यादा तक भाव से अमर रहेंगी। धन्य है ऐसी माताओं को। दूसरी माताएँ भी दृष्टान्त लेंगी कि अपनी सन्तानें को धार्मिक शिक्षा के विषय में अज्ञात नहीं रखना चाहिए। [illegible] होनेपर वे आवारा और नास्तिक हो जायँगी; और लोग [illegible] इससे तो उनकी माता अगर वन्ध्या रही होती तो क्या [illegible] जाता था? पुत्रादि अवगुणी और नास्तिक हों, तो [illegible] दायित्व माता-पिता के लिए भी कम नहीं हो सकता।

हमारा मनोवेदनः

हे अतिमुक्त बा. ब्र. विनोदमुनि !

हम लोगोंने जब आपका नाम 'विनोद' रखा, तब हमें यह स्वप्न में भी मालूम नहीं था, कि कहीं 'विनोद' शब्द का अर्थ 'निर्धूनन' भी होता है।

क्या उस नामकरण के बीच भी आपकी ही कोई प्रेरणा काम कर रही थी? क्या संसार का निर्धूनन कर, लोकविजय को वरण करनेकी आपकी तैयारी तभी की थी?

हे स्वयं दीक्षित बा. ब्र. विनोदमुनि !

दीक्षा के लिए आपकी तत्परता को प्रारंभ में तो हमने 'बालिश' माना था; सही रूप से तो अब मालूम पड़ता है कि बालिश हमीं थे, आप सच्चे मुज्ञ थे।

वयवृद्धि के साथ आपने प्रव्रज्या के लिए उतावली करनी शुरू की। आपको सम्मति देने का धर्मलाभ हमें प्राप्त हो, इसलिए आपने तो हमें अनेक अवसर दिये; परन्तु निज की मोहदशा की बदौलत हम आप की उस आशुप्रज्ञ पण्डितदशा को नहीं पहचान पाये !!

हे 'असंखयं जीविय मा पमायए' महामंत्र के आराधक !

आप तो पूर्वावतार में ही सम्यक्परिणति के अन्तिम सोपान पर कालधर्म को प्राप्त हुए होंगे इसीलिए इस अवतार में आपने प्रथमतः ही प्रमाद का परिहरण कर लिया था न?

स्वयंदीक्षा लेने में आपने त्वरा रखी, क्या उसका कारण भी यही था कि, अब इस अवतार में काल की गति, आपकी सिद्धि गति को अन्ततः हड़प न कर जाय?

दुर्लभजी शामजी वीराणी.
मणिबहन दुर्लभजी वीराणी.

समयं गोयम मा पमायए"



श्री विनोदकुमार श्रीमाल

(दीक्षा लेने से पहले शास्त्राभ्यास करते

जन्म : पोर्ट सुदान, संवत् [illegible]

दीक्षा

खीचन — (राजस्थान)
स. २०१३. वैशाखकृष्ण १२

फलोदी
सं. [illegible]

महानुभावो,

धर्मकरणी करने में उपयोगी निम्नांकित पुस्तकें और अन्य उपकरण, लगी हुई क़ीमत से आधी कीमत में दिये जाते हैं। अतः जिनको ज़रूरत हो, उन्हें चाहिए कि वे निम्न पते से प्राप्त कर लें, या डाकद्वारा मँगवा लें (डाकखर्च अलग लगेगा)

नाम	लगी हुई क़ीमत	आधी क़ीमत
श्री जैनतत्त्वप्रकाश	६-०-०	३-०-०
सम्यग्दर्शन और अध्यात्मज्ञान	४-०-०	२-०-०
महामन्त्र आराधना, श्रुतज्ञान-प्रश्नोत्तरी और तत्त्वसंग्रह	४-०-०	२-०-०
श्री धर्मध्यान और सज्झायमाला	३-८-०	१-१२-०
श्री दंडकाववोध ग्रंथ	३-०-०	१-८-०
श्री जैनज्ञानसागर	३-०-०	१-८-०
श्री बृहद् जैन थोक संग्रह	३-०-०	१-८-०
अतिमुक्त बा. ब्र. श्री. विनोदमुनि का जीवनचरित्र (द्वितीयावृत्ति) गुजराती	२-८-०	१-४-०
अतिमुक्त बा. ब्र. श्री. विनोदमुनि का जीवनचरित्र हिन्दी प्रथम संस्करण	२-८-०	१-४-०
श्री सिद्धि के सोपान	१-८-०	०-१२-०
श्री नवतत्त्व और जीवविचार	०-८-०	०-४-०
भावनाशतक तथा कर्म और आत्मा का संयोग	०-८-०	०-४-०
श्री प्रतिक्रमणसूत्र	०-६-०	०-३-०
श्री सामायिक सूत्र	०-१-६	०-०-९
ऊन के गुच्छे	३-८-०	१-१०-०
ऊन का कटासन	२-८-०	१-४-०
नवकारयुत चन्दन की माला	१-०-०	०-८-०
पुस्तक रखने का काष्टसाधन	१-०-०	०-८-०

पता
दिवानपरा गली नं. ६
रा ज को ट

श्री शामजी वेलजी वीराणी और
श्री. कड़वीबाई वीराणी स्मारक

– स्वर्गस्थों की पुण्यतिथियाँ –

पूजनीय पिताजी,
श्री शामजी वेलजी वीराणी
(संवत् २००२, माघकृष्ण १२, तारीख़ २८-२-'४६)



पूजनीय माताजी,
श्री कड़वी बाई वीराणी
(संवत् २०१०, भाद्रपद शुक्ल १४, तारीख़ ११-९-'५४)



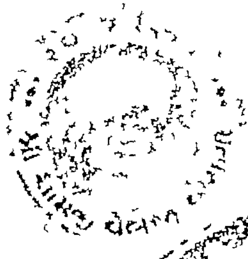
बा. ब्र. श्री विनोदमुनिश्री
(संवत् २०१३, श्रावन शुक्ल १२, तारीख़ ७-८-'५७)



उपर्युक्त पुण्यतिथियों में
कुटुम्बी एवं स्नेही वर्ग,
अपनी आत्मा की उन्नति के लिए,
भव्यात्माओं के जीवन में से अनुकरणीय
व्रत नियमों-जैसे कि सामयिक, प्रतिक्रमण, संवर,
चोविहार, उपवास, एकासन, आयंबिल, ऊनोदरी आदि--
को यथाभाव करके उनकी वास्तविक जीवनस्मृति
अपने जीवन में उतारे, यही नम्र विज्ञप्ति है।

हमारी जागृति ही उनकी स्मृति हो।

–आत्मबन्धु







"असंखयं जीविय मा पमायए"

अपने हृदय की चिरन्तन प्रकाशमान

धर्मज्योति से हमारे जीवनमें भी

[illegible] प्रकाश भरनेवाले

[illegible]

श्रीमान् [illegible] वीराणी

[illegible]

स्व. पू. मातुश्री

कडवीबाई वीराणी

[illegible]

जन्मसे ही वैराग्यरंजित

स्व. बा. ब्र. विनोदमुनिजी को

अति पुनित

बा. ब्र. श्री विनोदमुनि

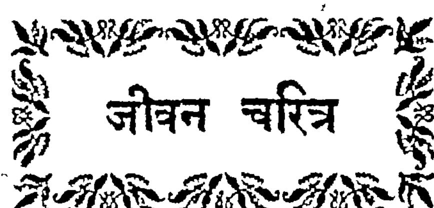
जीवनचरित्र

ग्रंथ समर्पित.

लि. [illegible]



अतिमुक्त
वाल ब्रह्मचारी श्री विनोदमुनि का
संक्षिप्त



श्री महावीर भगवान की स्तुति

संसार दावानल दाहनीरम्,
सम्मोह धूली हरणे समीरम्,
माया रसादारण सार सीरम्।
नमामि वीरं गिरि सार धीरम्॥

अर्थ :— संसाररूप दावानल (अग्नि) को बुझाने के लिए जल समान, मोहरूपी धूल को उड़ाने में पवन समान, माया रूपी पृथ्वी को खोदने में मजबूत और तीक्ष्ण हल के समान, मेरु पर्वत जैसे धैर्यवान श्री वीरप्रभुको मैं प्रणाम करता हूँ।

दोहे।

(बा. ब्र. श्री विनोदकुमार मुनि की स्तुति)

पङ्कज निपजत पङ्क में, ज्यों अलिप्त बन जाय;
त्यों रहकर संसार में, रहे विनोदकुमार ॥१॥

संसार दुखमय समझकर, चढ़े त्याग के पन्थ;
धन्य विरागी आत्मवर, स्वतो बने निर्ग्रन्थ ॥२॥

कड़ी दाढ है काल की, चबा जान सब साज;
रहे नहीं सुर-इन्द्र भी, क्या गरीब क्या राज? ॥३॥
त्यों बनकर वे प्रान्त में, भयप्रद जो स्थित;
भावि मिथ्या बनता नहीं, समझ शान्त हो चित्त ॥४॥

जैन उपाश्रय —आम्बाजी स्वामी
पोरबन्दर, १७-८-'५७

बा. ब्र. श्री विनोदमुनि की पुण्यस्मृति में-

पू. मुनिश्री आम्बाजी स्वामिरचित

प्रभु महावीर की महिमा।

दोहे

विर धीर चौवीस में, नो तव सम था कोई;
दयावान भगवान जो, मुक्त हमेशा होई ॥१॥
निरखे लोकालोक भी, नाम गॉव औ' ठाम;
अमर गति ली आप ने, मन-चाहा है धाम ॥२॥
रहे उजाल इस लोक को, आत्मज्ञानी अनन्त;
तत्त्वज्ञात त्रिलोक का, मान्य श्रेष्ठ भगवन्त ॥३॥
नेह गेह को छोड़कर, प्रभुवर गत शिवपुर;
भूलो नहीं प्रभु नाम को, शान्ति मिले भरपूर ॥४॥
तिर्थरूप त्रिलोक में, अमर प्रभु का नाम;
रसना से स्मृत हो सदा, पोषण हृदय आराम ॥५॥

उपर्युक्त स्तुतिरचना करके श्री आम्बाजी स्वामी ने पोरबन्दर से श्री बा. ब्र. विनोदमुनि के संसारपक्ष के

पिताजी, वीराणी दुर्लभजीभाई और मणिबहन के ऊपर किसी सद्गृहस्थ के द्वारा, निम्नांकित सन्देश के साथ भेजी है।

सन्देश.

जैनधर्मानुरागी वीराणी श्री दुर्लभजीभाई और अ. सौ. मणिबहन,

आप सकुटुम्ब को, अत्र विराजित पू. जी आम्बाजी-स्वामी ने याद करके धर्म करणी करने का फरमाया है। साथ ही साथ, श्री विनोदकुमार मुनि का जीवनवृत्तान्त पढ़कर मालूम पड़ा कि यह घटना बड़े बड़े धीर वीरों का भी हृदय पिघला सकती है। उनकी आत्मा ससार की विचित्र माया में जरा भी लिप्त नहीं हुई; किन्तु कमल की भाँति निर्लेप रही–यही उनकी आत्मा की ज्वाजल्यमान रेखा गिनी जा सकती है।



बा. ब्र. श्री विनोद मुनिश्री की संसार पक्षीय माताजी की व्यथा–

अब तो वह रत्न चला गया! समाज का आशादीप बुझ गया! उदित होते ही अस्त हो गया!! अब वह दीप फिर से आ सकनेवाला नहीं है।

"आचार्य देवो भव"

मेरे परम उपकारी धर्महेतुभूत
परम पूजनीय शासनभूषण महाराज
श्री १००८ बालब्रह्मचारी पण्डितरत्न
महाप्रभावशाली प्रखर तत्त्वज्ञानी
ओजस्वी महात्मा,
मुनिश्री प्राणलालजी स्वामीजी को
अपने अन्तःकरण के शुद्ध भाव से
कोटि कोटि वन्दन हों।

ॐ शान्तिः ! शान्ति !! शान्ति !!!

गुणानुरागी,
दुर्लभजी शामजी वीराणी.

प्रकरण १

भावना.

श्री देव, गुरु, और धर्मतत्त्व की स्तुति से लेखिनी का प्रारम्भः—

मङ्गलाचरण.

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो;
देवावि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो.

अर्थः—धर्म उत्कृष्ट मांगलिक है; अहिंसा, संयम और तप उसका स्वरूप है। शुद्ध धर्म में सर्वदा जिसका मन रहता है उसको देव भी नमस्कार करते हैं।

ऐसे शुद्ध धर्म में किसकी आत्मरमणता थी? पूज्य श्री १००८ तपस्वीजी लालचन्दजी महाराज के चरणसेवक और स्वयंबुद्धरूप दीक्षा ग्रहण करनेवाले बा. ब्र. श्री विनोदमुनि की। संसार पक्ष में श्री वीराणी कुटुम्ब के कुलदीपक श्री वीर विनोदकुमार की, कि जिन्होंने संसार में श्रावक व्रत धारण कर, संसारका परित्याग किया।

इस जीवनचरित्र का प्रारंभ करते हुए, लेखक को अत्यन्त आनन्द हो रहा है। क्यों कि जिन महापुरुष का जीवन लिखने का है उनका त्याग और वैराग्य, इस विषमकाल में अप्रतिम माना जा सकता है। मनचाहे बेजोड़ दीव्य सुख प्राप्त होते हुए भी, एवं भोग भोगनेलायक इक्कीस वर्ष की नववय होते

हुए भी, अन्यच्च माँ–बाप और कुटुम्ब का अनुपम स्नेह होते हुए भी यह संसार जिन्हें संपूर्ण दुःखमय मालूम हुआ है।

फालके प्रमाण में जिसकी ऋद्धि सिद्धि उच्च कक्षा तक पहुँची हुई है, ऐसे कुटुम्ब में जन्म पानेवाला और महासुख-स्वामी संसारका त्याग करता है, वह त्याग की सत्यता को आगम की मुहर लगने का द्योतक ही तो है।

लेखक ऐसे वालब्रह्मचारी साधु के गुणगान करने में अपना संपूर्ण आत्मकल्याण समझता है; और अपने एवं बा. ब्र. श्री विनोदमुनि के स्वधर्मन्याय से गुरु और धर्मतत्त्व के तत्त्व का एक ही प्रकार होने से, इन तीनों महतत्वों का विनय करके अपनी लेखिनी शुरू करने की महती भावना रखता है। साथ ही साथ स्वधर्मियों से आग्रह करता है कि, इन तीनों महातत्त्वों की आराधना में संलग्न होकर, पाठकगण और लेखक बा. ब्र. श्री विनोदमुनि के दर्शन करें। ऐसे भावनिग्रन्थ के दर्शन करने के लिए अनन्त पुण्य अपेक्षित है।

प्रथमतः इष्टदेव श्री अरिहन्त देव के गुणग्राम करते हुए इशानकोण की ओर मुख करके लेखक 'थयथुईमंगलम्' पाठ त्रिशाल दृष्टि से शुरू करता है।

(नोटः–इस पाठका माहात्म्य, श्री: उत्तराध्ययनजी सूत्र के २९ वें 'सम्यग् पराक्रम' नाम के अध्ययन में, (जिसका दूसरा नाम 'तिहत्तर फलाफली' भी है) तिहत्तर में से १४ वें फल को निम्न-लिखित प्रश्नोत्तरी का रूप दिया गया है।

श्री गौतमस्वामी भगवान से पूछते हैं कि–

प्र०– थयथुइमगलेणं भन्ते! जीवे किं जणयइ?

उत्तरमें भगवान फरमाते हैं कि:–

४० नाण दंसन चरित्त वोहिलाभं जणयइ । नाण दंसण चरित्त वोहिलाभ संपन्नेयणं जीवे अन्त किरियं कप्पविमाणो ववत्तिंग आराहणं आराहेइ ।

भावार्थ यह है कि — श्री गौतमस्वामी श्री भगवान से पूछते हैं कि, हे भगवान ! 'थयथुइ मंगलम्' पाठ की आराधना करनेवाले जीव को क्या लाभ होता है ? इसके उत्तर में भगवान फरमाते हैं कि, इस पाठ की आराधना करनेवाले को ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और वोधवीज की प्राप्ति होती है; और परिणामतः कुछ जीव उसी भव में सिद्धगति को पा सकते हैं; और कर्म शेष हों, तो देवलोक को तो अवश्य गति करते हैं। इसलिए लेखक अन्तर्वृत्ति में अनन्त शान्तरस पैदा हो, इस भावना से पाठ के शब्दों का उच्चारण कर, अपनी आत्मा के भाव लेखिनी में उतारता है वह उत्कृष्ट मांगलिक पाठ यह है :—

प्रिय पाठक ! द्वादशांग में उपर्युक्त 'थइथुइपाठ' का जो माहात्म्य—गौरवरूप—वताया गया है, वह पाठ देवादिष्ट है, ऐसा जैनदर्शन का मन्तव्य है ।

जैनधर्म वताता है कि, तीनों लोगों में रहे हुए देव, अनेक मतवाले होने पर भी भगवत्स्तुति करते हैं और सभी देवों के लिए यह एक ही स्तुतिपाठ सर्वमान्य रूप से प्रवर्तमान है, अतः इस पाठकी आराधना करनेवाले को अत्यन्त विवेक पुरःसर प्रवृत्त होकर आराधना करनी चाहिए !

पाठ के मूल शब्दों के अर्थ जगत के सभी धर्मों की मान्यता के लिए भी अनुकूल हैं, अतः इस स्थल में लेखक मूल पाठ को, जैनदृष्टि को प्राधान्य देते हुए पेश करता है, और साथ ही साथ शब्दार्थ भी दे रहा है । वह महामंगल मूल्यवान पाठ निम्नांकित रूप से है :—

मूलपाठ : – नमोत्थुणं, अरिहन्ताणं, भगवंताणं, आइगराणं, तित्थयराणं, सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससिंहाणं, पुरिसवर पुंडरियाणं, पुरिसवरगंध हत्थिणं, लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहियाणं, लोगपईवाणं, लोगपज्जोयगराणं, अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाणं, बोहिदयाणं, धम्मदयाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहिणं, धम्मवरचाउरंत चक्कवट्टिणं, दीवोताणं, सरणगइ पइट्ठा, अप्पडिहयवर नाण दंसण धराणं, वियट्टछउमाणं, जिणाणं, जावयाणं, तिन्नाणं, तारयाणं बुद्धाणं, बोहियाणं मुत्ताणं, मोयगाणं, सव्वन्नुणं, सव्वदरिसिणं, सिव, मयल, मरुय, मणंत, मक्खय, मव्वाबाह, मपुणराविति सिद्धगई नाम धेयं, ठाणसंपत्ताणं ॥

शब्दार्थ

नमस्कार हो अरिहन्त भगवन्त को। भगवत्स्वरूप कैसा है? आदिकर्ता, आदिनाथ, तीर्थकर्ता, स्वयंबुद्ध, पुरुषोत्तम, पुरुषार्थकेसरी, सिंहस्वरूप पुण्डरिक–कमलरूप, गन्धहस्तिरूप, लोकोत्तम, लोकनाथ, लोकहितैषी, लोकदीपक, लोकउद्योत, अभयदाता, चक्षुदाता, मार्गदाता, शरणदाता, संजीवनीस्वरूप बोधिबीजदाता, धर्मदाता, धर्मनायक, धर्मरूप रथ के सारथी, धर्मचक्रवर्ती बेटसमान, दुःखहर्ता, अधोगमनशील जीवों के आधारभूत, अप्रतिहत ज्ञानदर्शन स्वरूप, श्री वीतराग, रागद्वेष जेता, और जीतानेवाले, तरणतारणज्ञाता, और ज्ञान देनेवाले सर्वकाममुक्त और छोड़ानेवाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, उपद्रवरहित, अचल, संपूर्णारोग्य, मरणरहित, क्षयरहित, बाधापीडारहित, और अवतारमोचक, सिद्धगति और स्थान प्राप्त करनेवाले–ऐसे सम्बोधन युक्त भगवान को लेखक बारबार प्रणाम करता है।

नमोत्थुणं अरिहन्ताणं भगवन्ताणं :–

अर्थः– कर्मरूपी शत्रु को मारनेवाले, रागद्वेषरहित श्री अरिहंत भगवान को नमस्कार हो।

अरहिन्त शब्द का अर्थ परमार्थतः 'वीर' होता है, और प्रभुस्वरूप धर्मवीरता में सन्निविष्ट होने से धर्मवीर को नमस्कार– यह अर्थ है।

दूसरे दुश्मनों की अपेक्षा रागद्वेष के ऊपरकी जीत प्राप्त करना दुर्जेय होने से, उन का क्षय करनेवाला ही सच्चा धर्मवीर माना जा सकता है। इस कर्मरूपी शत्रु को मारने का शस्त्र, ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तपरूप मार्ग ग्रहण करने में है।

इस मार्ग को ग्रहण करने का कार्य किसने किया?

श्री वीराणी कुटुम्ब के कुलदीपक श्री. विनोदकुमार ने! इससे धर्मवीर श्री विनोदकुमार को लेखक के वार वार नमस्कार हैं।

परमशुद्ध दृष्टि के न्याय से श्री तीर्थंकरदेव, उत्कृष्ट धर्मवीर हैं।

वे कौन?

जिनका पाचवें आरेमें धर्मशासन चलता है, वे चरम तीर्थंकर देव, श्री श्रमण भगवान महावीरजी, कि जिन्होंने राज्यवैभव छोड़कर साढ़े बारह वर्षों और एक पक्ष तक तप किया, उसमें केवल दो घड़ियाँ ही निद्रा में विताईं, और तीन सौ उनचास दिनों में ही आहार किया। इस प्रकार, कर्म का पराभव कर, कामक्रोधादि शत्रुओं के ऊपर जय प्राप्त कर, केवलज्ञान और केवलदर्शन को सिद्ध कर लिया, ऐसे श्री अरिहंत को लेखक का नमस्कार है।

आइगराणं :– सभी तीर्थंकरों के केवलज्ञान की प्राप्ति के समय के वाद, ही धर्म का आदि–प्रारंभ–माना जाता है, इसलिए हे भगवान्! आप को 'आदिनाथ' सम्बोधन दिया गया है।

(श्री तीर्थंकर देव का उपदेश शुरू होते ही तीर्थ की स्थापना हो जाती है ।)

तित्थयराणं :–जिस से तारण–तरण हो सकता है, वह तीर्थ है। हे प्रभो ! आप के बताए हुए ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप के मार्ग में, आप के शासन में प्रवर्तमान होकर, साधु, साध्वियाँ श्रावक और श्राविकाएँ आदि लोग मोक्ष मार्ग की ओर गमन करते हैं इस से आपको 'तीर्थंकर' सम्बोधन दिया गया है, तीर्थंकर का अर्थ है–तीर्थकर्त्ता ।

सयंसंबुद्धाणं :– हे प्रभो ! आप को बोध देनेवाला कोई नहीं है। आप स्वयमेव बोध को प्राप्त हुए होने से आप को स्वयंबुद्ध सम्बोधन दिया गया है.

(हे महाबल! इस स्तुतिपाठ में आपके अनन्त पराक्रम को जगत के जीव समझ सकें, इसलिए नीचे के चार सम्बोधन हैं, कि जिन में 'पुरिस' शब्द का प्रयोग हुआ है उस का अर्थ 'पराक्रम है।)

पुरिसुत्तमाणं :– उत्कृष्ट शुद्ध पराक्रमवाले पुरुषोत्तम को नमस्कार हो ।

पुरिससिंहाणं :– उपसर्ग परिषह में निर्भय, और कर्म का नाश करने में सावधान, ऐसे उत्कृष्टपुरुषार्थभाववाले नरकेसरी को नमस्कार हो !

पुरिसवरपुंडरियाणं :– हे पुण्डरिक ! फूलों में कमल की जाति श्रेष्ठ मानी जाती है, जिसका धर्म पानी में रहते हुए भी पानी से अलिप्त रहेनेका है। उन कमलपुष्पों में से भी लाख पंखुरियों वाला पुण्डरिक कमल सर्वश्रेष्ठ है! आपका यह पुण्डरिक साम्य, आपकी मनुष्यों से पर रहेनेकी शक्ति को सिद्ध करता है, मनुष्य लोक मे रहते हुए भी। इसलिए हे भगवन्, आप को पुण्डरिक कमल का सम्बोधन दिया गया है।

पुरिसवरगन्धहत्थिणं :– हे बलवान्! हाथियों में गन्धहस्ती की जाति महा पराक्रमशालिनी मानी गई है, जिसकी गन्ध मात्र से अन्य जातियों के हाथी डर कर भाग जाते हैं। ठीक उसी प्रकार आप जहाँ विराजमान होते हैं वहाँ विरोधाभास स्वरूप मिथ्यात्व-वादियों का मिथ्यात्व निगल-पिघलकर नष्ट हो जाता है! आपका स्वरूप ऐसा युगप्रधान है, इसलिए आप को नमस्कार।

निम्नलिखित सम्बोधनों का लोक अपेक्षा से वर्णन करनेमें आया है।

लोगुत्तमाणं :– लोक में श्रेष्ठ तत्त्व आप ही हैं, क्यों कि आप उत्तम प्रकार की आत्मिक ऋद्धि के धारण करनेवाले होने से आप को 'सर्वोत्तम' विशेषण दिया गया है।

लोगनाहाणं :– हे अनाथ के नाथ! आप में सभी जीवों के दुःख दूर करने की भावना, हमेशा प्रवर्तमान रहती है, इस लिए सारा जगत आप को 'त्रिलोकीनाथ' का सम्बोधन करता है।

लोगहियाणं:– हे परमहितैषी। आत्मकल्याणरूप आपका हितैषी गुण, इतना प्रबल है कि उस गुण का सम्पादन करने वाले को कभी अहित में परिणत होने का अवसर ही नहीं आता इससे आपको हे दयानिधि, हे करुणाकर, आदि सम्बोधन दिये जाते हैं।

लोगपईवाणं :–हे लोकदीपक! जिस प्रकार अन्धकार में सूर्य का प्रकाश होते ही, चक्षुदर्शन से, जो पदार्थ जैसा होता है, वैसा ही दीख पड़ता है, ठीक उसी प्रकार आपके आगम रूप दीपक से आप अनन्तज्ञान दर्शनस्वरूप हैं। हे भगवन्, मुमुक्षु लोग आपका उसी तरह का दर्शन करते हैं।

लोगपज्जोयगराणं :– हे लोक-उद्योत! ज्योतिचक्र तो अपनी अपनी मर्यादा के क्षेत्रमें ही प्रकाश करता है, जब कि

आप का केवलज्ञान तो सभी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें प्रकाश देता है। वह दिव्य प्रकाश, और किसीका नहीं, वरन आप ही का है।

(हे गुणसागर ! आपने उत्तमगुणों को संक्रान्त करनेवाले बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त कर सकते हैं, इस न्याय से आप को निम्नांकित सम्बोधन दिये जाते हैं)

अभयदयाणं:- आपका स्वरूप ही अभय को देनेवाला है, और उसका निमित्त कारण, सम्पूर्ण षट्काय जीवों की रक्षा स्वरूप आपका संपूर्ण आत्मधर्म है। और आप के अनुयायियों को भी आप षट्काय जीवों की रक्षा करने का, आगमों के द्वारा बोध देते हैं इसलिए आपको 'अभयदाता' का सम्बोधन दिया गया है।

चक्खुदयाणं:- आप ज्ञानरूप चक्षु के दाता हैं आप से प्राप्त हुए सूत्र ज्ञान रूपी चक्षु से जीव मोक्षप्राप्ति कर सकते हैं।

मग्गदयाणं:-भगवन् ! आपको 'मार्गदाता का सम्बोधन है; क्यों कि ज्ञान, दर्शन चारित्रय ओर तपरूपी मोक्षमार्ग आपके आगम भावों से ही प्राप्त हो सकता है।

सरणदयाणं:- हे अशरणशरण ! जन्म, जरा और मृत्युरूप संसार के भयसे त्रस्त लोगों को जब मदद की खोज में निकलना पड़ता है, ऐसे समय में आपकी ही शरण सही होती है। इस विषय में सर्व लोकमतों की समान मान्यता है।

जीवदयाणं:-जन्ममरण पानेवाले संसारी जीव तो सर्वदा मरे हुए ही हैं। जब कि आप के आगम ज्ञान का स्पर्श कर, सयम-मार्ग का ग्रहण करनेवाले जीव तो शाश्वत मोक्षसुख का अनुभव करते हैं, कि जहाँ से फिर मरणप्राप्ति नहीं होती। इससे-आप का आगम स्वरूप, संयमरूप जीवन को देनेवाला होने से-आप को हे भगवन्, 'जीवदाता' का सम्बोधन दिया गया है।

वोहिदयाणं:– हे अनुपम वोधवीजदाता ! वोधवीज, वह सम्यक्त्व है, कि जिसकी प्राप्ति, आप के आगमज्ञान से ही होती है। उस स्थिति में आप को 'वोधिदाता' सम्वोधन है।

धम्मदयाणं:–हे धर्मदाता ! आप का अखण्ड स्वरूप, धर्मतत्त्वमय ही है। अग्नि से ज्वालाएँ अलग नहीं रहतीं, उसी तरह आप से धर्मतत्त्व पृथक् नहीं किया जा सकता। इससे अनुभव सिद्ध शुद्ध आत्मधर्मद्वारा मोक्षमार्गरूपी धर्म के आप दाता हैं।

धम्मदेसियाणं :– आप पैंतीस प्रकार की वाणीरूपी दिव्य ध्वनि से जो दिव्यधर्म उपदेश दे रहे हैं, उसका श्रोताजनों के ऊपर यह परिणाम होता है कि सर्व देव मनुष्य तिर्यञ्च आदि अपनी अपनी भाषा में उसे समझ लेते हैं। इसीसे आप को 'धर्मोपदेशक' सम्वोधन लगाया गया है।

धम्मनायगाणं:–हे धर्मनायक ! आप एकान्त शुद्ध मोक्ष मार्ग में प्रेरणा देनेवाले होने से आप धर्म के नायक हैं।

धम्मसारहिणं :– हे धर्मरूपी रथ के सारथी ! जिस धर्मरूपी रथ के आप सारथी हों, वह रथ कभी उन्मार्ग पर नहीं जाता। सीधा ही मोक्षमार्ग की ओर प्रयाण करता है।

धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टिणं:– हे धर्मचक्रवर्ती ! महाराज ! चतुर्गतिरूप संसार का अन्त करने में आपका स्वरूप इस लोक में अनन्त पराक्रमरूप होने से, आप को धर्म के विषय में प्रधान चक्रवर्ती महाराज का सम्वोधन दिया गया है।

दीवो :– हे द्वीपकल्पस्वरूप ! तूफानी सागर में फँसे हुओं को जिस प्रकार द्वीपकल्प का आधार होता है, उसी प्रकार, संसार सागर के तूफानों में फँसे हुओं को आपके वताए मोक्ष मार्ग रूप धर्मकी शरण का ही एक मात्र आधार है।

ताणं :– हे भवदुःखभंजन ! जन्म, जरा और मरण के दुःखों का अन्त प्राप्त करने के लिए, आप के ध्येय को अग्रस्थान देना ही चाहिए। इसलिए एक आवाज से सभी के द्वारा आप, सर्वलोक दुःखहर्ता कहे गये हैं।

सरणगइपइट्ठा :– हे अधमोद्धारण ! अधोगमन से जीव को वचानेवाले आपका नाम और गुण ही शरणरूप हैं।

अपडिहयवर नाण दंसण धराणं :– आप के प्रधान–ज्ञान, दर्शन, गुण–अप्रतिहत हैं। प्रधानज्ञान से केवलज्ञान अभि-प्रेत है। ऐसे ज्ञानदर्शनघाटक को नमस्कार हो।

वियट्टछउमाणं :– हे वीतराग देव ! ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और वीर्य के ऊपरके समस्त आवरणों का आपने नाश किया है; इस से छदमस्त अवस्थारहित आप हैं; अतः आप 'वीतराग' सम्बोन्धन से विभूषित हैं।

जिणाणं जावयाणं :– हे अजित ! आप से प्राप्त वीतराग दशा में प्रवर्तमान होकर आपका श्रद्धावान् भक्त रागद्वेष का पराभव कर सकता है उसका अर्थ यह है कि आपने कर्मों के ऊपर जय प्राप्त की है, और अन्य को उसका उपाय बता रहा हैं, इसीसे आप को अजित सम्बोन्धन दिया गया है।

तिन्नाणं तारयाणं :– हे तारक ! आप अनन्तशक्ति सपन्न होकर संसारसागर पार कर गए; और बाद कर्मरूप नाव, भक्तजन के लिए कर गये। उस स्थिति में आपको 'तरण–तारण' सम्बोधन है।

बुद्धाणं बोहियाणं :– आप केवल ज्ञान से सर्व भावों को जानते हैं और केवल ज्ञानका भी आप के आगमोपदेशों से ज्ञान के अधिष्ठाय बन सकते हैं; इसलिए आप को 'बुद्ध बोहि' सम्बोधन दिया गया है।

मुत्ताणं मोयगाणं:- आप सभी कर्मबन्धनों से मुक्त हुए हैं, और आपकी आगमवाणी दूसरों को कर्मबन्धनों से मुक्त कराती है-अर्थात् मोक्ष प्राप्त करा सकती है।

(निम्नलिखित सम्बोधनों को सिद्धगति के साथ सम्बन्ध है, और इस पाठ के 'भगवन्त' शब्द के साथ समन्वय है।

सव्वन्नुणं सव्वदरिसिणं:-हे सर्वज्ञ! हे सर्वदर्शिन! लोकालोक स्वरूप के सर्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, और भावों को सभी अणु अणु मात्र, आप एक ही साथ जान और देख रहे हैं।

अन्तराल में बैठकर, कुछ भी करें जो वात;
मन में भी जो भाव हैं, सब जानत जगनात (दलपत)

सिव-हे कल्याणस्वरूप! आप का निवासस्थान, अनन्तसुख के धाम स्वरूप है, कि जहाँ संपूर्णतया उपद्रवराहित्य है; और उसी से जहाँ पूरे भावपूर्वक आपका कीर्तन करने में आता है, वहाँ अवश्य उपद्रव का नाश होता है। इसलिए हे सिद्ध भगवान्! आप को 'सिद्ध' का सम्बोधन दिया गया है।

मयलं:-हे अचल! आप के स्थान जैसा स्थान, लोक में दूसरी जगह नहीं है, जहाँ जन्म, जरा और मरण के लिए स्थान ही नहीं है।

मरुयं:- हे आरोग्यस्वरूप! सर्व संसार के स्वरूप विषय कषाय के प्रभाव में रोगमयता ही प्रवर्तमान रहती है। हे दीननाथ! आप का शुद्ध क्षेत्र ही केवल शुद्ध आरोग्यस्थान है; इसलिये हे भगवान् आप को 'परम आरोग्य' का सम्बोधन दिया गया है।

मणंतं:-हे सिद्ध स्वरूप! आप के गुणों और [illegible] अन्त नहीं है।

मक्खयं :- हे अक्षय ! आप की स्थिति और गुण सब अक्षय हैं- कभी नष्ट होनेवाले नहीं है।

मव्वाबाहं :- हे सच्चिदानन्द ! आप के स्वरूप में किसी भी प्रकार से बाधाएँ या विघ्न नहीं आते हैं।

मपुणरावत्ति सिद्धिगई नामधेयं ठाणं संपंताणं :- हे काल के भी काल स्वरूप ! जहाँ से फिर अवतार नहीं लेना पड़ता ऐसी सिद्धगतिनामक स्थान को आप प्राप्त हुए हैं।

उपर्युक्त पाठ दूसरी वार पढकर लेखक श्री सिद्ध भगवान के गुणगान करता है; और उसी तरह तीसरी वार पाठ कर के लेखक इस ग्रन्थ के नायक बा. ब्र. श्री विनोदमुनि को नमस्कार करता है।

अपूर्व गुरुतत्त्व.

द्वादशांग के नियमानुसार, गुरुस्थान निर्ग्रंथ को है। अर्थात् जिसका ग्रन्थिभेद हुआ है, ऐसी समदृष्टि आत्मा पंच महाव्रतधारी हो, सांसारिक बन्धनों से रहित हो, ऐसे निग्रन्थ को गुरुपद में माना जाता है।

द्वादशांग की आकलना करनेवाले, श्री तीर्थंकर देवके पट्ट-शिष्य निर्ग्रंथ ही होते हैं।

साधुवेष जीवों को वैराग्य का निमित्त बनता है; और साधु द्वादशांग वाणी का उपदेश करते हैं; इससे साधुपद गुरुस्थानीय माना जाता है।

पंचमहाव्रत का संक्षिप्त स्वरूप,

यह स्वरूप साधु का जाव जीव के प्रत्याख्यात रूप में होता है वह भी नौ कोटिवाला प्रत्याख्यान। अर्थात् जीव हिंसा न

करना, न कराना, न वा उसमें अनुमोदन देना–मन, वचन और काया से (३ × ३=९)

पंचमहाव्रत.

(१) जीवहिंसा न करना, याने जीवदया का पालन करना (षट्काय जीवों की रक्षा) (२) असत्य भाषण न करना, एवं षट्काय आरंभ का निमित्त और ऐसी भाषा का प्रयोग न करना। (३) अचौर्य, यानी चोरी न करना। (४) ब्रह्मचर्य, अर्थात् मैथुन का सेवन न करना। (५) अपरिग्रह अर्थात् सचेत–अचेत परिग्रह न रखना।

ऐसे पंचमहाव्रतधारी साधुओं का जीवन आठ प्रवचन मात्रा यानी पांच समिति, और तीन गुप्तिपूर्वक का बना हुआ होता है। साधु गौचरी न्याय से भिक्षाचरी करते हैं, और सूझते हुए निर्दोष आहार, पानी और स्थानक ग्रहण करते हैं।

श्री महावीर स्वामी के शासन के सभी साधुओं को प्रथम देवलोक के शक्रेन्द्र महाराज ने पॉचवे आरा के अन्त तक क्षेत्र सम्बन्धी आज्ञा दी है। तदुपरान्त ऐसे साधुओं को धर्मदेव का सम्बोधन है, कि जिनके चरणों में देवेन्द्र नरेन्द्र पड़ते हैं।

धर्मतत्त्व.

धारण कर रखता है, वह धर्म है, अर्थात् जिससे जीवों की अधोगति न हो, और जीवों को आत्मभाव में धारण कर रखता है, उसका नाम धर्म है।

ऐसे शुद्ध धर्म का स्वरूप आगम प्रकरण ही है। आगम के आदेशानुसार, जहाँ षट्काय जीवों में से एक भी जीव की हिंसा न हो वही श्री श्रमण भगवंत महावीर का धर्म है।

देखिए श्री सूयगडांग सूत्र अध्ययन १, उद्देश ४, गाथा १०, निम्नलिखित है:-

एवं खु नाणिणो सारं, जंन हिंसइ किंचणं;
अहिंसा समयं चेव, एतावन्तं वियाणिया ॥१॥

भावार्थ:—आगमों में ज्ञानी का कहने का सार यह है कि यत् किंचित् हिंसा से भी दूर रहना चाहिए, क्यों कि समतारूप धर्म को अहिंसा के साथ बहुत सम्बन्ध है—यह आगमों के प्रकाशक का मत है।

मारना बन्द कर, मरना बन्द होगा।

(काव्य)

मत मारो रे जीवको, यह जिनवाणी सार;
एक वचन पालन करे, प्राप्त करे भवपार ॥

सुख देकर ही सुख लो; दुःख देकर सुख नहीं लिया जाता। पुण्य भी एक शृंखला है; क्यों कि पुण्य भी पाप के सिवा नहीं हो सकता। इसलिए आगमन्याय के साधुओं के लिए पुण्य का भी त्याग है।

ऐसा सूक्ष्म दृष्टिवाला धर्म, द्वादशांग बताता है, कि जिस में ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तपरूप मार्ग, जीवों को मोक्ष प्राप्त कराने के लिए बनाया गया है।

जहाँ त्याग वहाँ धर्म, और जहाँ भोग वहाँ संसार।

*

है नहीं और भुगतता नहीं—उसका चारित्र्य, 'चारित्र्य' नहीं है; पर प्राप्त सुखों को भी नहीं भुगतने वाले का चारित्र्य ही 'चारित्र्य' है।

प्रकरण २

वीर विनोदकुमार का जन्म और कुटुम्ब परिचय

'यथा नाम, तथा गुणः' वाले इस परम वैरागी पुरुष का जन्म, विक्रम संवत १९९२ में, अनार्यक्षेत्र पोर्टसुदान (आफ्रिका) में, कि जहाँ वीराणी कुटुम्ब का व्यापार, आज दिन तक था, हुआ था।

श्री विनोदकुमार के पुण्यवान पिताजी का नाम, सेठ श्री दुर्लभजी शामजी वीराणी, और गर्भधारिणी माहाभाग्यवान माताजी का बहन मणिबहन वीराणी है। दोनों का मूल निवासस्थान राजकोट (सौराष्ट्र) है। (नोट :- श्री विनोदकुमार की जन्मतारीख मिल नहीं पाती, क्यों कि वीराणी कुटुम्ब की कुलप्रथा के अनुसार, कुटुम्ब में जन्माक्षर आदि रखने की रूढि नहीं है।

(प्रस्तुत प्रकरण की रचना में लेखक का हेतु, श्री वीराणी कुटुम्ब की पहचान कराने का नहीं है और हो भी नहीं सकता; परन्तु श्री विनोदकुमार की जातिसम्पन्नता और कुलसम्पन्नता सिद्ध करने का ही हेतु है। वर्तमान युग के जन्मचरित्रों में प्रायः अतिशयोक्तिवाले भाव रहा करते हैं; किन्तु इस ग्रन्थ के लेखक को सिद्धान्तवाद के साथ सम्बन्ध है किसीभी हालत में सिद्धान्त का भोग देकर लेखक कलम नहीं चला सकता; क्यों कि वस्तु को यथास्थित समझाने की बजाय, कम, अधिक या विपरीत स्वरूप दिया जाय, तो मिथ्यात्व का दोष लगे, और सम्यग्दर्शन का ह्रास हो जाय।

समस्त प्रकरण में जो भाव प्रदर्शित किये गये हैं, वे जगविख्यात हैं। एक भी शब्द में ज़रा भी फ़र्क नहीं है। यह प्रकरण परमावश्यक तत्त्व से पूर्ण इसीसे बनता है, कि, आगमन्याय से श्री विनोदकुमार की आत्मा की पहचान देने का लेखिनी का प्रयास है, अतः श्री विनोदकुमार की पूर्वभव की उत्तम करणी के आगमन्याय से अनुमान बाँधकर लेखरचना करने की है; एवं इस महान् आत्मा की ज़रूर ही देवगति हुई होगी – ऐसे, आगम को स्पर्श करते हुए अनुमानों को लगाना है।

द्वादशांग का आदेश है कि, पूर्वभव में जिन जीवों ने 'मान' कषाय का मर्दन किया हो, 'मद' प्रमाद को छिन्न विच्छिन्न कर दिया हो महातपस्विता धारण की हो, अत्यन्त धर्मविचारणा की हो, शुद्ध धर्म की पहचान की हो, संयम के विषय में महापराक्रम फैलाया हो, 'हीनकर्मी' आत्मा बनी हो, जिनका, नजदीक में जघन्य तीन भव उत्कृष्ट आठ भव में मोक्ष साधने का हो, ऐसे कुछ जीवों के पास इतने शुभकर्म के दलिए हों, कि जिन के परिणाम से आगे आगे देवमनुष्यादि भवों का अनुभव करके फिर मोक्षगति पाएँ अर्थात् तपस्वी बनकर देवलोक में उत्पन्न होते हैं। ऐसे सात आठ भव देवलोक और मनुष्यलोक में जाकर, जन्म लें, फिर मनुष्य हों, वहाँ भी ऐसी आत्माओं को संसारसुख प्रिय नहीं होते। प्राप्त सुखों को छोड़कर फिर दीक्षा लेकर देवलोक में अन्त में अवश्य सिद्धगति को प्राप्त करते हैं।

पूर्वभव के तपस्वी जब मनुष्य लोक में अवतार धारण करते , तब सुखों के राशि के ऊपर उनका जन्म होता है। ऐसे सुख की प्राप्ति में उनको कुछ पाप–लेश भी पाप–नहीं करना पड़ता–सुख भी अनुपम होता है। आर्यक्षेत्र में जन्म लेते हैं विनोदकुमार का जन्म अनार्यक्षेत्र में है; तथापि माता की कुक्षि धर्मसहित आर्य है। ऐसे अनार्यक्षेत्र में माताजी आर्यक्षेत्र की क्रियाएँ किया ही करती हैं, इससे माता के गर्भ में ऐसे धर्मानुष्ठान

के बीच बाह्य अनार्यक्षेत्र की लेश भी हवा स्पर्श न कर सकी। इस का नाम 'स्थापना निक्षेप है।'

उच्च गोत्र में उत्पन्न होनेवाले के आठ लक्षण द्वादशांग में नीचे दिये अनुसार हैं:-

१ जातिसम्पन्नता-अर्थात् कुलवती माताजी के गर्भ में आना।
२ कुलसम्पन्नता-अर्थात् पिता का कर्मशूर होना।
३ बलसम्पन्नता-अर्थात् अपराजितता।
४ तपसपन्नता-अर्थात् समस्त जीवन धर्मानुष्ठान को अर्पित करना।
५ रूपसम्पन्नता-अर्थात् कोमलांगोपांगों का स्वामी-रूपवान-होना।
६ लाभसम्पन्नता-अर्थात् मातृगर्भमें आने के साथ कुल की लक्ष्मी का वृद्धि को प्राप्त होना।
७ सूत्रसम्पन्नता-अर्थात् शुद्धज्ञान को पढनेवाला होना।
८ अधिकार सम्पन्नता-अर्थात् राजाओं या सेठों (श्रेष्ठियों) के कुल में उत्पन्न होना।

तदुपरान्त दूसरे लक्षणों में देव, गुरु और धर्मतत्त्व का आराधक होना, माता-पिता आदि गुरुजनों को आदर करना, आदि हैं।

इन सभी लक्षणों से युक्त, श्री विनोदकुमार का जन्म है, उसे सिद्ध करने तत्त्वों को इस प्रकरण में बताया गया है, जिसके निमित्त से पाठकगण को पूर्वभव के अस्तित्व और मरकर गत्यन्तर के अस्तित्व में श्रद्धा उत्पन्न करनेवाला यह प्रकरण हो जाता है।

जिस प्रकार पुत्री ससुराल जाती हो, तब लग्न की तैयारी में, पूर्व भूमिका के रूप में ससुराल में रचना होती है। लग्न

होने के साथ ही पुत्री, माँ-बाप का देश छोड़कर (इतर लोक) श्वशुरदेशगामिनी होती है, उसी प्रकार विनोदकुमार के जन्म के लिए पूर्वभूमिका की रचना होती है, और फिर उनका जन्म होता है, उस यन्त्र को बतानेवाला यह प्रकरण बनता है, गुण गुणों का आकर्षण बनते हैं।

श्री वीराणी कुटुम्ब का पुण्यठाठ और उस के कारणः-

इस कुटुम्ब की पूर्वपर्य्याय, स्थानकवासी धर्म की परंपरा से चली आती है (यह अतिसंभाव्य है कि लम्बे अरसे की शुद्ध पर्याय में शुद्ध तत्त्वों के दर्शन किसी काल में जीवों को मिलते हैं। अर्थात् बहुत समय के अन्तराल में, बा. ब्र. श्री विनोदमुनि जैसे ज्ञानी उत्पन्न होते हैं।

धर्म की जहाँ शुद्ध पर्याय प्रवर्तमान हो, वहां संसारसुख खुद चलकर आता है-आना पड़ता है।

इस न्याय के अनुसार यह वीराणी कुटुम्ब आज भी काल के प्रमाण में महा ऋद्धि सिद्धि युक्त और ख्याति के साथ धर्मभावना को प्राप्त है। ऐसे विषमकाल में यशःकीर्तिनामकर्म-धारी इस वीराणी कुटुम्ब का नाम समस्त सौराष्ट्र में, भारत के कुछ शहरों में और विदेश में मशहूर है।

राजकोट और आफ्रिका में इस कुटुम्ब के रहते हुए मनुष्यों के रूप, गुण, पुरुषार्थ आदि गुणों की समीक्षा यदि की जाय, तो निरीक्षण करनेवाला सच्चे दिलसे प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता।

इस कुटुम्ब में गुरुजनागत विनय विवेक के उत्तरोत्तर गुण ऐसे चले आते हैं कि वे गुण ऋद्धि सिद्धि को जरूर आकर्षण किए बिना नहीं रह सकते; अर्थात् खींच कर जरूर लाते हैं।

इस कुटुम्ब में रहे हुए सभी जीवों की व्यवहारदृष्टिसे धर्म श्रद्धा अगर देखी जाय तो इस लोक में उस की जोड मिलनी दुर्लभ है।

इस कुटुम्ब के वीर पुरुषों का वर्तमान युग की पृथक् पृथक् संस्थाओं में अगुआपन सिद्ध करता है कि अनुकूल होने की कोई महाशक्ति उन में काम कर रही है; क्यों कि वीराणी कुटुम्ब के नाम से, वर्तमान युग के अनुसार अनेक संस्थाएँ समाज से अनुकूल प्रवर्तमान होकर लोकोपयोगी बन गई हैं। और दुर्बल दुबलेपतले जीवो के आशिर्वाद, यह कुटुम्ब ले रहा है।

वंशपरम्परा का उदारता का गुण इतनी प्रचुरमात्रामें उत्तम प्रकार से कुटुम्ब में प्रवर्तमान है कि, गरीब-भिखारी लोग कुछ न कुछ हमेशा ही यथायोग्य दान ले रहे हैं।

कुटुम्ब में सहकार, जगत के जीवों के लिए बोधप्रद है वैशिष्ट्य तो यह है कि वर्तमान युग की शिक्षा का प्रचार कुटुम्ब में कालानुसार संपूर्णतया देखने में आता है; परन्तु पूर्वजो से प्राप्त हुई संस्कृति की लगाम कभी भी हाथ से नहीं छूटती।

समस्त कुटुम्ब में व्यापारी रक्त इतने जोश से बहता है कि स्वतंत्रता के सिद्धान्त के गुण की खबर इस वीराणी कुटुम्ब को मानो हो ही नहीं। अर्थात् समस्त कुटुम्ब व्यापारी कला में निपुण है; और व्यापार विकास की स्थिति इतने उत्तम प्रकार की है कि, जिस प्रकार कोई एक बड़ी नदी में से अनेक नहरें निकलकर अनेक क्षेत्रों को पानी देती है, उसी प्रकार इन व्यापारियों की कुशलता दूसरों के लिए भी लाभदायक सिद्ध हुई है।

समय समय पर संसार की प्रवृत्तियों में यह कुटुम्ब ओत-प्रोत मालूम पड़ने पर भी धर्मक्रिया के नियमों का पालन मुख्यतया पाया जाता है।

काठियावाड़ जब समुद्र-पर्यटन से डरकर, देशाटन करने में पीछे रह रहा था, और कंढाल आगे था, तब भी इस कुटुम्ब के पूर्वजों ने दूर आफ्रिका में प्रविष्ट होकर व्यापारी कुशलता को सिद्ध किया है, और नाम कमाया है। उस के प्रताप से यह वीराणी कुटुम्ब, आज बड़ी समृद्धि का उपभोग कर रहा है।

पुरजों और गुरुजनों की पुण्यशीलता के गुणग्राम, सदैव इस वीराणी कुटुम्ब के विनयवान पुरुषों की जीभ के ऊपर सूर रूप से प्रवर्तमान होते रहे हैं, और साथ ही साथ धर्मभावना के अलंकार उसमें काम करते रहे हैं।

संतोंकी सेवा का महागुण समस्त कुटुंब में इतनी सुन्दर रीति से काम करता है, कि अनेक जीवों को वह गुण बोधपाठ रूप बन जाता है।

इस पुण्यवान् कुटुम्ब का संसार व्यवसाय इतना विस्तृतिप्राप्त है कि, पुरुषवर्ग को दुपहर की सामान्य-दो घड़ी की-निद्रा भी प्राप्त नहीं हो सकती। फिर भी कौशलपूर्वक सभी व्यवसायों को पहूँच जाने की अगाध ताक़त, इन विरल पुरुषों में देखने में आती है। वे धर्मक्रिया के सभी समयों की रक्षा कर, प्राप्त सम्पत्ति के सुख का अनुभव भी करते हैं, और हरएक उत्तरदायित्व का समुचित पालन करते हैं।

पुरुषवर्ग जितना व्यवसाय, कुटुम्ब की अगुआ स्त्रियों का भी है, फिर भी, धर्म नियमों का पालन उत्तम प्रकारका करती

हैं। सामयिक, प्रतिक्रमण, पौषधव्रत आदि धर्मानुष्ठान, इन स्त्रियों के जीवनमें मुख्यतया कार्य करते हैं; और घर में संसारकी सुख सम्पत्ति के साथ धर्म भी सिद्धिरूप में प्रवर्तमान है।

इस महाभाग्यवान कुटुम्ब को सद्गति प्राप्त हो ऐसे साधु साध्वियों को पात्र में दान करने के उत्तम योग प्राप्त होते हैं; और घर के सभी जीव कृतार्थ होते हैं।

इस उज्जवल कुटुम्ब की सब से बडी विशेषता तो यह है कि मुखमुद्रा में वह रूपगुण के साथ सदाचारका भी दुनिया को दिग्दर्शन कराता है; अर्थात् यह कुटुम्ब सदा निष्कलंकता से प्रवर्तमान हो इसका समस्त कुटुम्ब में सम्पूर्ण खयाल भी प्रवर्तमान है। ऐसे अनेक गुणों से युक्त इस वीराणी कुटुम्ब की आज हस्ती है, उसकी ऐसी भाग्यवत्ता के विशेष कारणों की ओर अब हम दृष्टि डालते हैं।

श्री वीराणी कुटुम्ब के पुण्यठाट के मूल कारण

श्री विनोदकुमार के दादा सेठ श्री शामजी वेलजी वीराणी और उनकी धर्मपत्नी श्री कडवीबाई वीराणी का उत्तम प्रकार का धर्मानुरागी जीवन, इस पुण्यठाठरूप शरीर में आत्मा के रूप से काम कर रहा है, कि जिन्होंने समस्त कुटुम्ब में धर्मवारिसदारी प्रवृत्त कराके स्वर्ग की राह ली है। ऐसी प्रभावशाली धर्मिष्ठ आत्माओं के जीवन पर प्रकाश डालने की परम आवश्यकता दीख पडती है; क्यों कि लेखक सिद्ध करना चाहता है कि, धर्म की शुद्ध सम्यक्त्व रूप पर्याय में, इस दिव्यपुरुष श्री विनोदकुमार का जन्म हुआ है; और जरूर ही पूर्वभव से समकित के साथ इस आत्मा के माता के गर्भ में आने की घटना घटी हो, तो आश्चर्य की बात नहीं है।

अपने दादा, सेठ श्री शामजी वेलजी वीराणी और दादी श्री कडवीबाई वीराणी के जीवन की रूपरेखा देने के लिए आगे ही इस वीराणी कुटुम्ब की छः सात पीढ़ियों का वृक्ष प्रथम प्रकाश में रखा गया है।

इस वीराणी कुटुम्ब की उज्ज्वलता की आत्मा के स्वरूप यदि कोई हो, तो, वे कि जिन्होंने अपने पूर्वजों को शोभा दी है, पूर्वजोंकी सम्यक् पर्याय को सिद्ध किया है; ऐसे आदर्श-युगल रूप उत्तम प्रकारका सुभागी-जीवन चलानेवाले सुश्रावक और सुश्राविका मानने योग्य, मूल रूप बने हुए, सेठ श्री शामजी वेलजी वीराणी और उनकी धर्मपत्नी श्री कडवीबाई वीराणी। उनके उत्तम संसार का दिग्दर्शन करें।

श्री विनोदकुमार के दादा श्री शामजी वेलजी वीराणी और श्री शामजीभाई की धर्मपत्नी श्री कडवीबाई वीराणी का संक्षेप में जीवन-रहस्य.

सेठ श्री शामजी वेलजी वीराणी मूलतः खीरसरा के निवासी थे। अपने दो भाइयों- श्री अम्बावीदासभाई और श्री देवराजभाई और अपनी बहन दूधीबहन के साथ खीरसरा में रहते थे; और व्यापार कपास का और धनविनिमय का अपनी शक्ति के अनुसार करते थे। पुण्यशालिता के ठाठ में आनन्दमय जीवन गुजारते थे। दैवयोग से अपने से छोटे भाई श्री अम्बावीदास भाई का बम्बई में उन्नीस वर्ष की युवान वय में अवसान हो गया; और श्री दूधीबहन का अच्छे घरमें विवाह कर दिया गया; पर उनकी आयु छोटी थी। मात्र दो वर्ष का संसार भोगकर कालधर्म उन्होंने प्राप्त किया।

श्री शामजी भाई में प्रतिरोम व्यापारी पराक्रमके साथ धर्म-भावना प्रवर्तमान थी, अतः संपूर्णतया व्यापारी कौशल होने

स्व. धर्मानुरागी पूज्य



श्री शामजी वेलजी वीराणी

के साथ उन के हृदय में पूर्णतया नीति को स्थान था। प्रामाणिकता उनका मुद्रालेख था। हर रोज़ किसी न किसी प्रकारका धर्मानुष्ठान करना ही चाहिए—ऐसी उनकी उत्कृष्ट भावना हमेशा प्रवर्तमान थी। स्वभाव उन का शान्त और दयामय था।

श्री शामजी भाई अपने पिताजी के एक उच्च कोटि के सुपुत्र थे। उसका प्रमाण यह है कि एक समय पिताजी वेलजी भाई को अपने कपास (आड़) के व्यापार में बड़ी नुकसानी आई। उस को उन्होंने अपनी कमाई से पूरा कर दिया।

शामजी भाई व्यापारी साहस के लिए वराड़ में गये थे; और थोड़े समय में व्यापार में कुशलता प्राप्त की; पर उस क्षेत्र के साथ भाग्य की कामयावी कम थी. इसलिए घटना ऐसी घटी कि काठियावाड में हैजे की बीमारी आई। और हैजेने उनकी माताजी का भोग लिया। नतीजा यह हुआ कि व्यापार छोड़कर अपने वतन में आना पड़ा।

श्री शामजी भाई और श्री कडवीबाई लग्नग्रन्थि से जुड़े जाते हैं।

घर में माताजी के अवसान के बाद, स्त्रियों में कोई नहीं। इस से शामजी भाई का उनके पिताजीने व्याह कर दिया; और ग्यारह वर्ष की उम्र में, श्री कडवीबाई वोराणी, श्री शामजी भाई की धर्मपत्नी बन गई। इन कडवीबाई की सारी जिन्दगी सिद्ध करती है कि वे महालक्ष्मी रूप से श्री शामजी भाई की धर्मपत्नी बनी थी।

कडवीबाई ऐसी सद्भाग्यवती थीं, कि घर में आने के साथ ही ऋद्धि-सिद्धि की दिनप्रतिदिन अभिवृद्धि होती चली जो अभीतक अनुपम रूप से चल रही है (ऐसा होना ही चाहिए दादा-दादी की परम शुद्ध परम्परा में श्री विनोदकुमार का आकर्षण होनेवाला होगा, यह भाविभाव)

श्री कड़वीबाईने, सद्भाग्य से अपने पति के साथ रहकर, ऐसी उत्तमता प्राप्त कर ली, कि पतिपत्नी की ऐसी समानगुण युक्त युगलता का दर्शन करने के लिए भी भाग्य होना चाहिए।

इन महालक्ष्मी का नाम था कड़वीबाई; पर सर्वांग अमृतरस-मय जीवन समेत, खानदान स्वभाव की, कार्यकुशलतावाली, अनेक गुणसहित, ससुराल के और पितृपक्ष के कुल को उज्ज्वल करने-वाली धर्मवृत्तिवाली स्त्री कि जिनकी पुण्यशीलता के दर्शन करने वाले भी पुण्यवान बन जायँ ऐसी थीं।

हमेशा के लिए सामायिक आदि व्रतों के नियमों का पालन करना, तो उनका मुख्य गुण था ही; साथ ही साथ अष्टमी, पाखी आदि के पौषधव्रत भी थे।

विशेष भाग्यवत्ता तो यह थी कि पुत्र भी मातापिता के भक्त उत्पन्न हुए, कि जो पुण्यशीलता में स्वहस्त से बहुत दानादि उदार गुणों से प्रसिद्ध हुए। उन महालक्ष्मी की पुण्य-वत्ता का लाभ, अनेक जीवों को अनेक संस्थाओं के द्वारा सीधा ही या किसी के ज़रिये आज भी मिल रहा है।

पुत्रों ने कड़वीबाई माताजी के पुण्यार्थ के लिए, उनके यानी कड़वीबाई के नाम से अनेक संस्थाएँ खड़ी की हैं कि जिन में श्री कड़वीबाई कन्याविद्यालय का नाम राजकोट में प्रसिद्ध है। इस के अतिरिक्त अनेक धर्मकरणी के स्थानक (उपाश्रय) भी इन कुलीन महिला की पुण्यशीलता के स्मरण में खड़े किये गये हैं; और गौशालाएँ एवं दवाशालाएँ भी चल रही हैं।

इस पुण्यशीलता का नमूना सिद्ध करता है कि वीराणी कुटुम्ब की अभिवृद्धि की नींव में इन महालक्ष्मी स्वरूप श्री कड़वीबाईकी पुण्यवत्ता काम कर रही है। ऐसी उत्तम महिला का संसारसुख

स्व. धर्मानुरागी पूज्य



मातुश्री श्री लछमीबाई बीराणी

प्राप्त करने वाले, श्री शामजीभाई के अनेक सद्गुणों की अब हम विशेषता से देखेंगे। खीरसरा में हरएक मनुष्य की श्री शामजीभाई की ओर संपूर्ण ममता थी। गाँव के लोगों के साथ अधिकारी वर्ग की भी उनके प्रति पूर्ण ममता थी। उनकी कुशलता का श्रेष्ठ प्रमाण यह है कि गाँव के प्रमाण में वे अव्वल नम्बर के साहसिक व्यापारी माने जाते थे। इस साहसिकता के गुणने यह काम किया कि उन्होंने अपने छोटेभाई देवराज भाई को ऋद्धिसिद्धि की अभिवृद्धि के लिए दूर कसाला सुदान (आफ्रिका) भेजा कि, जब काठियावाड़में समुद्रयात्रा के साहस के लिए भय था।

श्री देवराज भाई अपने गुरुबन्धु, शामजी भाई की आज्ञाको अत्यन्त विवेक और विनयपूर्वक मानते थे; और अपने मातृपक्ष, कि जिस की पीढी कसाला में चलती थी, जिसका वतन कालाबड़ (शीतला) था, और रवाणी कुटुम्ब के नाते जो 'वल्लभजी सुन्दरजी के नाम से प्रख्यात था, उस पक्ष के नेताओं की कसाला की पीढ़ी में व्यापार के लिए गये; और पीढ़ी में तीन साल तक नीतिपूर्वक प्रवर्तमान होकर, एक कुशल व्यापारी बन गये। तब से इस वीराणी कुटुम्ब की अभिवृद्धि का वृक्ष निरूपित हुआ।

श्री देवराज भाई की व्यापार में अभिवृद्धि और स्वतन्त्र पीढ़ी की स्थापना.

श्री देवराज भाई कसाला में अपने मातृपक्ष में काम करते थे, यह काम, आज्ञांकितता से प्रवर्तमान होकर पूर्ण सत्कार से छोड़ा; और कसाला में एक छोटी सी दूकान शुरू की। व्यापारी पराक्रम विकसित किया।

इन देवराज भाई के नीतिगुण को लक्ष्य कर अगर कहें, या उदारता के गुण के मुताविक कहें, या मिलनसार स्वभाव के गुण से कहें—दिनप्रतिदिन व्यापार, वृद्धि को प्राप्त होता गया कि जिस का महालाभ, उन्होंने अपने बड़े भाई श्री शामजी भाई वीराणी के कुटुम्ब को वहुत अच्छी तरह से दिया।

देवराज भाई का यह गुण सिद्ध करता है कि, वे पूरे उदार दिल के पुरुषार्थी—और व्यापारी रक्त धारण करनेवाले थे।

श्री रामजी भाई वीराणी, पीढ़ी के अधिष्ठाता बनते हैं।

श्री देवराज भाई विवाह करने के लिए आफ्रिका से स्वदेश में आये, और पीढ़ी का कारोवार, श्री शामजी भाई वीराणी के बड़े पुत्र रामजी भाई वीराणी को सौंपा; और श्री देवराज भाई के हाथों में रहकर, तालीम प्राप्त किये हुए, रामजी भाईने पूर्ण निपुणता से पीढ़ी की कार्यवाहीको सम्हाल लिया। इस समय में इन दोनों भाइयों का कारोवार देश और विदेश में संयुक्त था।

श्री देवराज भाई विदेश के व्यापार से निवृत्त होते हैं.

श्री देवराज भाई तो संतोषी पुरुष थे। धर्मिष्ठवृत्तिवाले भी थे। लग्न करने के वाद, सिर्फ दो वर्षों के लिए वापिस कसाला गये। श्री रामजी भाई के हाथोंवाले कारोवार से उनको वहुत संतोष हुआ; और वापिस अपने वतन में आये; और हमेशा के लिए, परदेश से वियुक्त हुए।

वे निवृत्त हुए। वाद में कसाला की दूकान का कारोवार श्री रामजी शामजी वीराणी के नाम से चालू हुआ। श्री देवराज भाई की आयु की लेनदेन कम थी, अतः वतन में आने के वाद, संवत् १९७५ में आए इन्फ्ल्यूएन्जा की बीमारी

का भोग बन गए। इतना ही नहीं, पर बदनसीब से उनके दो पुत्रों में बडे पुत्र अमृतलाल भाई का भी इस बीमारी में अवसान हुआ। तब छोटे पुत्र श्री. रसिकभाई की आयु केवल एक ही वर्ष की थी।

श्री शामजी भाई का स्वाश्रयी जीवन इतना सरस और सुंदर था कि, अपने भाई देवराज भाई को व्यापारनिपुण बनाया, पर उनकी- ओर से एक पाई भी प्राप्त करने की कभी इच्छा नहीं की।

विदेश से अपने बडे पुत्र रामजीभाई को अपने वतन में बुलाकर, भायावदर में मोदी श्री. मोतीचन्द धरमसी की सुपुत्री दूधीबाई के साथ उनका विवाह किया।

इन गुणवान पुरुष शामजी भाई ने वंशपरम्परा से चली आती हुई धर्मदृष्टि की ओर आत्मा को ले जाने के लिए, संवत् १९७२ में, व्यापार से, अपनी आत्मा को निवृत्त बनाया। धर्म कार्य की सिद्धि के लिए उन्होंने ग्रामीण जीवन छोडा; और बडे शहेर में निवास करने का निश्चय कर लिया। फिर जब अपने दूसरे पुत्र श्री दुर्लभजी भाई, लग्न करने के लिए, स्वदेशमें १९७४ में आये, तब उनके लग्न के बाद, संवत १९७५ में राजकोट में आकर अब, जहाँ श्री दुर्लभजी भाई वीराणी रहते हैं, इस जमीन को खरीद किया। यह ४७५ वार की जमीन, रु० ७ के भाव से, दरबार श्री के पास से खरीद की गई थी। १९७७ में धर्मकरणी के लिए बाँधे हुए विचारों को अमली बनाने के लिए, खीरसरा छोडा; और राजकोट में निवास किया।

इस समय में अनेक गुणों के परिणाम से राजकोट के संघ में वे आदरणीय बन गये। उन का इतना बडा उदार

स्वभाव था, कि दान देने की वृत्ति के परिणाम से समाज में भी स्थान प्राप्त कर सके। उनकी वाणी ऐसी अमृतरसयुक्त थी कि, सुननेवाले के ऊपर जादू हो जाय, और उन के प्रति सभी ममतापूर्ण व्यवहार रखें। जोर से यदि कुछ कहने का मौका आ जाय, तो पश्चात्ताप उन्हें होता था; और जिस को बुरा लगा हो, उसकी माफी माँगने के सिवा उनको चैन नहीं होता था। और क्लेश के अन्त को लाने के बाद ही उन्हें आनन्द होता था।

उदारता का गुण इतनी मात्रा में था—और बढ़ता चला जाता था कि घर के आगे कोई कुछ लेने आनेवाला—माँगनेवाला निराश होकर वापिस नहीं जाता था।

इस उदारता के गुण की प्रशंसा, पोरबन्दरनिवासी घेवरिया श्री लक्ष्मीदास पिताम्बर, यहाँ तक करते थे कि, शामजी भाई जैसे उदार वृद्धपुरुष के दर्शन करने के लिए भाग्यवत्ता चाहिए। माँगनेवाले को कुछ न कुछ देना, उनका प्रधान गुण था। श्री लक्ष्मीदास भाई कहते थे कि, शामजी भाई में उदारता के अगाध गुण को देखकर, मैं बहुत सन्तुष्ट हुआ हूँ।

संसार में साधुभावरूप जीवन

एक समय ऐसी घटना घटी कि, उन के दवाखाने के मकान को बनाने का काम चल रहा था। उस में रात को भी काम चलता था। उस समय किसीने पेट्रोमैक्स बत्ती की चोरी की। मज़दूरों ने सुबह में चोर को खोज निकाला, और श्री शामजी भाई के पास हाज़िर किया। अगर वे आज्ञा दें, तो पुलिस को स्वाधीन करने की याचना भी की गई।

मज़दूरों की इस क्रिया के उत्तर में श्री शामजी भाई ने बताया कि बत्ती तो मिल गई। पुलिस को सौंपकर इस

मनुष्य को क्यों परेशान किया जाय ? पैसों की जरूरत होगी; इसलिए उसने यह काम किया होगा; अतः उसको छोड़ दिया जाय। मैं उसके दुःख को समझता हूँ।

इतना कहकर उन्होंने चोर को अपेक्षित कपड़े और अन्नादि चीज़ें दीं।

धन्य है शामजी भाई को, कि जिन के ऐसे सद्गुणों के प्रभाव से ही उन्हें सुखरूप कालधर्म की प्राप्ति हुई। उनकी कालधर्मगति केवलसुखरूप थी, उस में कोई सन्देह नहीं। अक्षरशः सत्य घटना है। उसको प्रकाशित करने का अपूर्व अवसर लेखक को प्राप्त हुआ है। अवसर निम्नलिखित रूप से है :—

बीमारी की शुरुआत के साथ एक ज़ोरदार झाड़ा आया, और शरीर में सामान्य अशक्ति ज्ञात हुई। बाद में तीन दिनों तक जीवित रहे। उस समयान्तराल में एक बार भी टट्टी नहीं गये। केवल दो चार बार पेशाब जाना पड़ा। मरते तक केवल प्रवाही पदार्थ खुराक में लिए; और धर्म के वातावरण में ही जिन्दगी के अन्तिम श्वासों की मूल्यवती घडियाँ चलती थीं, उस समय, गोण्डल निवासी श्री दामजीभाई आये थे कि जिन्हों ने उनकी मृत्यु पर्यन्त सज्झाय स्तवनरूप धर्म सुनाया था। हर्ष-पूर्वक इस का श्रवण कर, बीमारी के तीसरे ही दिन, सभी की उपस्थिति में कुछ भी दुःख बिना भोगे ही स्वच्छ शरीर से काल-धर्म को प्राप्त हुए। चेहरा ज्यों का त्यों—जरा भी मुरझाया हुआ नहीं—था। कोई नहीं कह सकता था कि उनका अवसान हुआ है।

सेठ श्री शामजी वेलजी वीराणी और उनकी पत्नी श्री कड़वी-बाई वीराणी का धर्मानुरागी जीवन, कि जो संक्षेप में ऊपर कहने में आया है। इस महा भाग्यवान युगल का पुत्रपरिवार भी दया धर्म के अधिष्ठाय से कुलाचारी प्रवर्तमान होता रहा कि, जिसके फल में दिव्य पुरुष श्री विनोदकुमार का अवतरण हुआ।

प्रकरण ३

वैराग्यज्योतिस्वरूप श्री विनोदकुमार की बाल्यावस्था, शालाकीय अभ्यास और व्यापारी कौशल।

इस प्रतापी पुरुष के जन्म के साथ ही, गर्भ में आगमन के साथ ही श्री वीराणी कुटुम्ब की ऋद्धि सिद्धि इतनी वृद्धि को प्राप्त होती गई कि, श्री विनोदकुमार की ओर सभी का सद्भाव स्वाभाविक ही था। नौकर चाकरों और कुटुम्ब परिवार के सुख में बालक की लाडभरी परवरिश हो, ऐसी स्थिति, पुण्यप्रताप से प्राप्त हुई थी।

जैसे श्री सुयगडांग सूत्र में आद्रकुमार के अध्ययन में, आद्रकुमार अनार्य क्षेत्रमें से आर्यक्षेत्र में आते है, और श्री भगवान महावीर से दीक्षा लेते हैं, वैसे ही श्री विनोदकुमार, बिल्कुल छोटी उम्र में माता-पिता के वतन-राजकोट-में माता के साथ रहकर धर्मव्रत धारण करते हैं।

माताजी को तो धर्म प्रिय था। हमेशा नित्यनियमानुसार सामायिक वे करतीं, प्रतिक्रमण करतीं, पौषध, उपवास आँबेल आदि तपश्चर्याओं के साथ ज्ञानाभ्यास भी करती थीं।

माताजी की यह धुन पुत्र को भी यकायक लग गई। और वह भी यहाँतक कि, माताजी की धर्मक्रियाओं का इतनी छोटी वय में श्री विनोदकुमार ख़याल रखने लगे। अगर माताजी कदाचित् धर्म-क्रिया के समय को भूल भी जातीं, तो विनोदकुमार स्मृति देकर धर्मकरणी कराते थे।

पुत्र के लक्षण पालने में से।

माता जी के धर्मानुष्ठान के परिणाम से, श्री विनोदकुमार

में धर्मभावना ने निवास किया। उनकी ज्ञानलाभ करने की आसक्ति यकायक ही बढ़ने लगी। जैन पाठशाला में जाकर पढ़ना शुरु किया; साथ ही साथ शालाकीय पढ़ाई भी शुरू की।

शालाकीय अभ्यास में, प्रारंभ से ही मैट्रिक तक का अभ्यास किया उस समय तक, इतने नियमित थे कि उनके गुरु की उनके ऊपर प्रसन्नता उतरी थी। वारवार गुरु विनोदकुमार के पिताश्री दुर्लभजी भाई से मिलते थे तब श्री विनोदकुमार की अभ्यास सम्बन्धी चौकसी के लिए और विनय, नम्रता आदि गुणों के लिए तारीफ़ करते थे। बीच में सांसारिक शिक्षा के साथ उनकी धर्मभावना इतनी जोरदार बनने लगी कि, धर्मज्ञान करने की अभीप्सा म, शालाकीय शिक्षा का लक्ष्य घटता चला। इससे वे राजकोट में 'नोन-मैट्रिक' तक की शिक्षा प्राप्त कर सके।

वीराणी कुटुम्ब का व्यापार, विदेश में जोरों के साथ चलता था, इसलिए, उनके पिताजी श्री दुर्लभजी भाईने अपने व्यापार में प्रवीण बनाने के लिए, श्री विनोदकुमार को विदेश भेजने की इच्छा की; और उनको संवत् २००७ के वैशाख मास में श्री दोलत भाई के साथ सुदान जानेके लिए, भेजा भी। इस समुद्र की सफर में उनके साथ श्री दोलत भाई (श्री छोटालाल भाई के साढु भाई के पुत्र) थे, कि जिन्होंने श्री विनोदकुमार का बहुत परिचय किया; और स्वभाव पहचानने का बहुत लाभ प्राप्त किया, कि जो दोलत भाई के शब्दों में श्री विनोदकुमार की धर्मभावना के सम्बन्ध में पाठक वर्ग को उपयोगी हो सकता है, वह निम्नलिखित है :-

सफर में, खुराक के सम्बन्ध में शहद, मक्खन, कन्दमूल आदि पदार्थ, कि जिनको खाने से धर्मभावना नष्ट होती है—ऐसे पदार्थ, श्री विनोदकुमारने कभी नहीं लिए-नहीं खाये-; और धर्मनियमों का सख्ती से पालन किया। इस समय, श्री दोलतभाई पोर्ट सुदान के आफिस में मुख्य कार्यकर्ता के नाते थे।

सुदान पहुँचने के बाद श्री विनोदकुमार, पीढी के काम में नियुक्त हुए; और अपने काका छोटालाल भाई की आज्ञा में प्रवर्तमान होकर कार्यकुशलता प्राप्त कर ली; औद काकाजी का अच्छा प्रेम सम्पादित किया।

संसार में भी वे प्रमादरहितता से वरतते थे उस के प्रमाण के लिए निम्नांकित घटना ही पाठकों के लिए पर्याप्त रहेगा।

राजकोट में मैट्रिक का अभ्यास अपूर्ण रहा था—यह विनोदकुमार के दिलका दुःख था; क्योंकि उनका स्वभाव, ऐसा बना हुआ था कि जो कार्य आरब्ध हुआ, उसे पूरा करना ही चाहिए। अतः अपूर्ण अभ्यास पूर्ण करने के लिए व्यापार में नियुक्त होते हुए भी पोर्टसुदान के कम्बोनी हाईस्कूल में दाखिल हुए; और पीढी के काम के साथ अभ्यास भी आगे बढ़ा लिया। इस प्रकार दुगुनी मेहनत, कार्यसिद्धि के लिए उन्होंने स्वीकृत कर ली।

(नोट :– कम्बोनी हाईस्कूल यानी अमेरिकन मिशन हाईस्कूल, कि जहाँ अंग्रेज़ी पढ़ने से, अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान अच्छा प्राप्त हो सकता है। इसके परिणाम से विदेशगमन में भाषा के सम्बन्ध में उन को कुछ कठिनाई न पड़ी।)

कम्बोनी शाला में मैट्रिक तक का ज्ञान पूर्ण कर लिया और उनकी इच्छा फिर से स्वदेश में आने की हुई। संवत् २००८ में वे स्वदेश में आये; और पंजाब युनिवर्सिटी की मैट्रिक का आवेदन-पत्र प्राप्त कर, परीक्षा देने के लिए पतियाला गये।

विनोदकुमार की चमत्कारिक ज़िन्दगी की अद्भुत घटना—कश्मीर की यात्रा और सन्त दर्शन। (लुधियाना)

पतियाला में परीक्षा देने के बाद श्री विनोदकुमार का दिल कश्मीर के प्रवास के लिए आकर्षित हुआ। इस समय, कश्मीर में 'परमीट' के सिवा दाखिल नहीं हुआ जा सकता था; और 'परमीट'

की प्रथा की, श्री विनोदकुमार को ज्ञान नहीं थी। वे निर्दोष भाव से कश्मीर देखने की भावना में सीमा में प्रविष्ट हुए। सीमा के ऊपर उन को कायदे के मुताबिक, रोक लिया गया। अधिकारियों ने 'परमीट क्यों नहीं ली', इसका खुलासा माँगा। विनोदकुमार ने अपनी निर्दोषता ज़ाहिर की; परन्तु उनको बाकायदा ज्ञात किया गया कि, आप को 'एरेस्ट' किया जाता है, यानी आप पकड़ लिए जाते हैं। अधिकारियों ने 'एरेस्ट' कर के, उन्हें बस-मोटर में बिठाया। इस समय मोटर में-बस में एक बड़े अधिकारी भी थे। चलते हुए मोटर में, इन बड़े अधिकारी के साथ श्री विनोद-कुमार को बातचीत का प्रसंग आया। श्री विनोदकुमार ने इन बड़े अधिकारी से कहा कि, मैं मैट्रिक की परीक्षा देने के लिए पतियाला गया था; और वहाँ मेरी ऐसी इच्छा हुई कि, कश्मीर यात्रा करूँ; और वहाँ से लुधियाना में हमारे पूज्य आचार्य महाराज श्री आत्मारामजी महाराज के, जो कि वहाँ विराजित हैं, दर्शन करूँ। इस भाव से पतियाला से मैं यहाँ आया हूँ।

मेरे पास 'परमीट' नहीं है, सो क्या मुझे कश्मीर में नहीं प्रवेश करने देंगे?

विनोदकुमार के इस प्रामाणिक और सरल उत्तर ने बड़े अधि-कारी का दिल पिघला दिया; और उनकी प्रेमधारा श्री विनोदकुमार की ओर बरसी। बातचीत में बड़े अधिकारी ने कहा-चिन्ता करने की कोई ज़रूरत नहीं: आप के लिए व्यवस्था हो जाएगी। इस प्रकार बड़े अधिकारी साहब, श्री विनोदकुमार के मित्र बन गए; और उन के हृदय में इस भावमुनि रूप श्री विनोदकुमार के अधि-ष्ठाय देव ने स्थान ले लिया था; अतः अधिकारी, श्री विनोदकुमार के वकील बन गए: और अफसरों के पास इन्हों ने बातें कीं कि, ये एक विद्यार्थी हैं। ये पतियाला में मैट्रिक की परीक्षा देने के

लिए आये थे। वहाँ से कश्मीर देखने की उन की इच्छा हुई। और निर्दोष भाव से परमीट लिए विना सीमा में दाखिल हुए हैं- इस वात की मैं साक्षी देता हूँ। ये पुरुष सरल और अच्छे मनुष्य के पुत्र हैं, इस की भी मैं गवाही देता हूँ।

अधिकारी की यह दलील, अफसरों के दिल में वैठ गई; और अधिकारी की गवाही के कारण से श्री विनोदकुमार को कश्मीर में दाखिल होने की परमीट (परवानगी) मिल गई।

प्रस्तुत घटना श्री विनोदकुमार के दिव्य चक्षुरूप सम्यग् दर्शन के ऊपर मुहर के रूप में हैं-उसमें आगमप्रमाणः-

साधुसाध्वी श्रावक श्राविकारूपी तीर्थ जहाँ सम्यगदर्शनरूप से प्रवर्तमान होता है (सम्यग् दर्शन के न्याय से धर्म व्यक्ति का बनता है, गुरु का धर्म कभी वन नहीं सकता) उस के ऊपर हमारे भरतक्षेत्र में प्रथम सुधर्म देवलोक के शक्रेन्द्र महाराज की सत्ता पाँचवें आरा के अन्त तक चली आनेवाली है। भगवती--सूत्र में उसकी गवाही है, और अतएव इस नियम के अनुसार, स्थानकवासी गुट में सामायिक, देशावगाशिक, पौषध आदि क्रियाओं में प्रवर्तमान, जव मात्रु परठाने के लिए स्थानक के वाहर आए, तव श्री शक्रेन्द्र महाराज की आज्ञा माँगनी पड़ती है; राजा की आज्ञा माँगने का व्यवहार नहीं है।

इस न्याय से श्री विनोदकुमार का जीवन, माताजी के गर्भ से कहें, या बाल्यावस्था से कहें, भावनिर्ग्रंथस्वरूप उनके स्वर्गगमन तक चल रहा था; और उस से ही उपर्युक्त कश्मीर की घटना में पुण्योदय को सहाय करनी पड़ी है।

यकायक अधिकारी किसी भी प्रकार की रिश्वत लिए विना, श्री विनोदकुमार के वकील बन जाते हैं; और श्री विनोदकुमार की कश्मीर देखने की आकांक्षा सफल बनती है।

लिए आये थे। वहाँ से कश्मीर देखने की उन की इच्छा हुई। और निर्दोष भाव से परमीट लिए बिना सीमा में दाखिल हुए हैं- इस बात की मैं साक्षी देता हूँ। ये पुरुष सरल और अच्छे मनुष्य के पुत्र हैं, इस की भी मैं गवाही देता हूँ।

अधिकारी की यह दलील, अफसरों के दिल में बैठ गई; और अधिकारी की गवाही के कारण से श्री विनोदकुमार को कश्मीर में दाखिल होने की परमीट (परवानगी) मिल गई।

प्रस्तुत घटना श्री विनोदकुमार के दिव्य चक्षुरूप सम्यग् दर्शन के ऊपर मुहर के रूप में हैं--उसमें आगमप्रमाणः-

साधुसाध्वी श्रावक श्राविकारूपी तीर्थ जहाँ सम्यग्दर्शनरूप से प्रवर्तमान होता है (सम्यग् दर्शन के न्याय से धर्म व्यक्ति का बनता है, गुरु का धर्म कभी बन नहीं सकता) उस के ऊपर हमारे भरतक्षेत्र में प्रथम सुधर्म देवलोक के शक्रेन्द्र महाराज की सत्ता पाँचवें आरा के अन्त तक चली आनेवाली है। भगवती--सूत्र में उसकी गवाही है, और अतएव इस नियम के अनुसार, स्थानकवासी गुट में सामायिक, देशावगाशिक, पौषध आदि क्रियाओं में प्रवर्तमान, जब मात्रु परठाने के लिए स्थानक के बाहर आए, तब श्री शक्रेन्द्र महाराज की आज्ञा माँगनी पड़ती है; राजा की आज्ञा माँगने का व्यवहार नहीं है।

इस न्याय से श्री विनोदकुमार का जीवन, माताजी के गर्भ से कहें, या बाल्यावस्था से कहें, भावनिर्ग्रंथस्वरूप उनके स्वर्गगमन तक चल रहा था; और उस से ही उपर्युक्त कश्मीर की घटना में पुण्योदय को सहाय करनी पड़ी है।

यकायक अधिकारी किसी भी प्रकार की रिश्वत लिए बिना, श्री विनोदकुमार के वकील बन जाते हैं; और श्री विनोदकुमार की देखने की आकांक्षा सफल बनती है।

श्री विनोदकुमार का जीवन अवश्य ही भावनिर्ग्रंथ स्वरूप स्व-भावगत आगम नियमानुसार, आज्ञा में रहकर प्रवर्तमान रहता था। वारवार उनकी आत्मा, सातवें 'अप्रमत्त संयति' गुणस्थान को स्पृष्ट होती-रहती थी, यह घटना की रूपरेखा के ऊपर से हम समझ सकते हैं।

अप्रमत्त गुणस्थान इतना प्रबल है कि, जिसकी प्रमाणता में शास्त्रकार बताते हैं कि -सात जीवों का देवता संहार नहीं कर सकते:- (१) आर्याजी, (साध्वीजी), (२) अवेदी, (३) परिहारविशुद्ध चारित्र्यशील, (४) पुलाकलब्धि, (५) अप्रमत्तसंयति, (६) चौदह पूर्वधारी साधु, (७) आहारक शरीरी।

इस दशा के समर्थन में, इस ग्रन्थ में अनेक मुद्राएँ पाठक-गण को प्राप्त हो सकती हैं, इसके ज़्यादा समर्थन में, इस स्थल में लेखिनी श्री भगवतीसूत्र का सिद्धान्त पेश करती है।

श्री भगवतीसूत्र में नियंठा का अधिकार है। नियंठा यानी निर्ग्रंथ (साधु)। द्रव्यलिंगाश्रयी निर्गन्थ को बताता हुआ यह महा आगम आदेश देता है कि, निर्ग्रन्थता, साधु के वेश में भी हो सकती है, गृहस्थ के वेश में भी हो सकती है, और मनुष्यलोक के किसी भी लिंग में हो सकती है। ऐसे निर्ग्रन्थ के कुल छः भेद हैं:-

(१) पुलाक, (२) बकुस, (३) पडीसेवी, (४) कषाय-कुशील, (५) निर्ग्रन्थ और (६) स्नातक।

उन में से दूसरे, तीसरे और चौथे नियंठे, पाँचवें आरा के अन्ततक प्रवर्तमान रहेंगे, ऐसी आगम की प्रमाणता है।

इस नियम के अनुसार श्री विनोदकुमार का संसार में नियंठापन गृहस्थलिंगस्वरूप से परिणाम की धारा से समय समय पर हो सकता है।

तदुपरान्त शास्त्र को उपमान दृष्टि से देखें, तो सत्य के साथ हमेशा शासनदेव कार्य करते हैं; और सम्यग्-दर्शनरूप तीर्थ का बचाव किया ही करते हैं, उसकी प्रमाणता में श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र का द्वादश अध्ययन, 'श्री हरिकेशी' मुनि का है, उसको समझ लेने के लिए पाठकगण से लेखक अनुरोध करता है।

श्री विनोदकुमार, मुनि के दर्शन के लिए।

श्री विनोदकुमार की कश्मीर देखनेकी तमन्ना पूरी हुई। कश्मीर के खूबसूरत और आकर्षक तत्त्वों का अवलोकन करके वे वापिस आए; और अपने निश्चित कार्यक्रम के मुताबिक, पूज्य आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज के दर्शन करने के लिए लुधियाना (पंजाब) आए।

(नोटः–पाठक गण को विचार करने के लिए यह प्रकरण बहुत महत्त्व रखता है, जो सिद्ध करता है कि श्री विनोदकुमारने कश्मीर को यात्रा की; पर उनकी आत्मा, वहाँ केवल दृष्टान्तरूप से ही थी। कश्मीर के किसी भी मोहक पदार्थ ने उनकी आत्मा के ऊपर लेश भी आकर्षण किया नहीं था, उसकी प्रमाणता यह है कि कश्मीर से लुधियाना आकर, श्री विनोदकुमार उच्च कोटि के महात्मा के दर्शन करते हैं; और वैराग्य का बोध सुनते हैं कि जिस के परिणाम से कश्मीर का अवलोकन देखा न देखा बन जाता है; और वहा से अपने वतन राजकोट में आते हैं।



स्वाध्याय का फल

स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्म क्षीण होते हैं, जब ज्ञानावरणीय कर्म क्षीण हों तब स्वयं आत्मविकास होता है।

आत्मा अपने स्वरूप में रहने से सभी दुःखों से छूट जाती है।

प्रकरण ४

श्री विनोदकुमार कोन्टीनेन्ट (योरप) की यात्रा में

संवत २००९ के वैशाख मास, (१९५३) में, लंडन में रानी एलिज़ाबेथ के राज्यारोहण का प्रसंग था, जो क्रिया बृटिश राज्य के महान ठाठमाठ रूप से होनेवाली थी। संसार की अनेक भाग्यवान आत्माएँ इस प्रसंग पर वहाँ एकत्र होनेवाली थीं। दुनिया के बड़े बड़े राजद्वारी, इस महोत्सव में भाग लेने के लिए पधारने वाले थे। बृटिश राज्य की बड़ी ऋद्धि सिद्धि का अनुभव करने का यह प्रसंग था; और साथ ही साथ श्री दुर्लभजी भाई के सुपत्र भाई श्री शान्तिलाल भाई (श्री विनोदकुमार के सगे भाई) वहाँ (लंडन में) बार-एट-लो का अभ्यास करते थे-उनसे मिलने की उनकी बहुत उत्कण्ठा हुई थी- इस प्रकार 'एक पन्थ दो काज' के नाते वहाँ जानेकी- लंडन जाने की उनकी इच्छा हुई। पिताजी की आज्ञा प्राप्त की और तारीख ८-५-१९५३ के रोज़ हवाई जहाज़ (एरोप्लेन) में बम्बई से लंडन जानेके लिए रवाना हुए। लंडन में रहनेवाले श्री शान्तिलाल भाई की भी भाई से मिलने की तीव्र इच्छा थी; और ऐसे आनन्दोत्सव के प्रसंग पर भाईके आनेका समाचार जानकर शान्तिलाल भाई बहुत आनन्दमें आ गये थे। भाई को भेंटने के लिए एरोड्राम पर वे उपस्थित रहे। दोनों भाई पूर्ण प्रेम से एक दूसरे से मिले, और दोनों के बीच आनन्द छा गया।

दूध में शक्कररूप वहाँ एक दूसरा प्रसंग यह प्राप्त हुआ कि इस राज्यारोहण के महोत्सव का अनुभव करने, और आनन्द अनुभव करने, पोर्टसुदान से, श्री छोटालाल भाई के पुत्र, चि० ललितभाई और दोलतभाई भी वहाँ आए थे कि जिन को कोन्टीनेन्ट के अनेक स्थलों में घूमने की भावना भी साथ साथ थी। उनके साथ रहकर

आनन्द का अनुभव करने का प्रसंग प्राप्त हुआ। कुटुम्ब का मेला जमा।

उन्होंने एकसाथ मिलकर युनाइटेड किंग्डम प्रदेश का अवलोकन किया; तदुपरान्त अनेक स्थलों मे – फ्रांस; बेल्जियम, हॉलेन्ड, जर्मनी, स्विट्झर्लेन्ड, इटाली आदि में– प्रवास किया। उसके बाद घटना एसी घटी कि, श्री विनोदकुमार भाई की सुदान की 'परमीट' का समय पूरा होता था, अतः वे रोम से खर्तून आनेके लिए रवाना हुए।

साथीदार योरप में ज्यादा समयतक रुके, अतः साथ छोड़कर श्री विनोदकुमार रोम से अलग हुए। संसार के मोहजाल में फँसे हुओं के लिए, ऐसे भव्य मेले अत्यन्त आनन्द के प्रसंगरूप बन जाते हैं; पर रुक्षपरिणामी श्री विनोदकुमार को ऐसे आनन्द के साथ कुछ भी लेन-देन न थी। इस के प्रमाण में निम्नाङ्कित बात, पाठकगण को श्री विनोदकुमार की आत्मा की पहचान के लिए ज़रूरी जँच पड़ती है।

श्री दोलतभाइ के कहने के अनुसार और अनुभवानुसार इस भव्य यात्रा यानी योरप की यात्रा में, श्री विनोदकुमारने संपूर्णतया अपने मन्तव्यानुसार सिद्धान्तगत नियमपालन किया था, और नाट्य, सिनेमा आदि सांसारिक सुखों से भी वे अस्पृष्ट रहे थे।

धन्य है इन वीर पुरुषकी श्रद्धा को, कि जो श्रद्धा उच्च कोटिकी आत्मा के परिणाम को सिद्ध करती है। जैन सिद्धान्त में ऐसे परिणामवाली आत्माको उच्च लेश्या का स्वामित्व दिया गया है कि जिस लेश्या का नाम 'तेजोलेश्या' है। उसके लक्षण, श्री उत्तराध्ययन जी सूत्रों ३८ में लेश्या अध्ययन में दिए गए हैं। वे निम्नप्रकार से हैं:–

नम्र स्वभाव, अचपलता, कपटराहित्य, कौतुहलराहित्य, विनयवत्ता, इन्द्रियदम, उपधान, तप, योगित्व, प्रियधर्मित्व, दृढ-धर्मिता और वज्रलेप पापों से भयवृत्ति।

उपर्युक्त लक्षणों के स्वामी श्री विनोदकुमार की आत्मा में इस भव्य यात्रा के सुख का ज़रा भी असर न पड़ा। उसके प्रमाण में अनेक मुद्राएँ, इस जीवन चरित्र में से शोधक को प्राप्त हो सकती हैं; और उसकी प्रमाणता में निम्नांकित बात लेखक पेश करता है:–

संवत् २००९ के भाद्रपद मास में, ता. ३०–७–५३ के दिन, वे खर्तुम आए, और खर्तुमसे पोर्टसुदान आकर आफिस के काम में संलग्न हो गए; पर धर्मको कभी भूलते नहीं थे। भोजन के समय पर घर पर आते, और भोजन कर लेते। और भोजन के बाद, आफिस में अगर काम न हो तो वे सामयिक करने बैठ जाते थे। प्राप्त सुखोंको अभोग्य समझनेवाले मनुष्य मोक्ष या तो देवलोक को वरण करते हैं ऐसी उनकी दृढ़ मान्यता थी। अतः यह वीराणी कुटुम्ब का कुलदीपक किसी भी प्राप्त सुख का आस्वादन नहीं लेता था। उस के प्रमाण में उच्च कोटि की शय्याओं का त्याग कर, हमेशा सोने के लिए केवल एक कम्बल, एक उसीसा और चटाई का ही उपयोग करते थे।

श्री विनोदकुमार का यह जीवन, उनकी आत्मा के वैराग्य का प्रमाण देता है। उस के समर्थन में, जैन आगम के मूलरूप श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र का २९ वाँ, श्री सम्यक्त्व पराक्रम नाम का अध्ययन साक्षीभूत है कि, जिसका दूसरा नाम तिहत्तर फालाफली है, ये तिहत्तर वचनों में से तीसरे वचन के साथ इस महातत्त्व का सम्बन्ध है। वह वचन निम्नलिखित है:–

श्री गौतमस्वामी का प्रश्न और भगवान का उत्तर:–

प्र. धम्मसद्धाए णं भन्ते। जीवे किं जणयइ?

उ. धम्मसद्धाएणं सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जई। आगारधम्मं च णं चयइ। अणगारिए णं जीवे सारीर-

माणसाणं दुक्खाणं छेयणभेयण संजोगाईणंवोच्छेयं करेइ। अव्वायाहं च सुहं निव्वत्तेइ ॥

भावार्थ प्र. हे भगवन् ! धर्म–श्रद्धा से जीव को क्या लाभ होता है?

उ.(भगवान आदेश देते हैं कि) धर्मश्रद्धावान जीव को शुभ कर्म के उदय में प्राप्त सुख भुगतना प्रिय नहीं लगता। ऐसा जीव श्रावक के व्रत अंगीकार करने के लिए तैयार होता है; और उन के फल में ऐसे जीव को साधुत्व प्राप्त होता है; और साधुत्व में रहकर ऐसा उत्थान कर्म बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम फैलाता है कि शारीरिक और मानसिक दुःखों का नाश हो जाता है; और अव्यावाध यानी पिड़ारहित मोक्षसुख प्राप्त करता है।

इस प्रकरण के समर्थन मे पाँचवाँ प्रकरण अति रसमय रीति से समझने के लिए लेखक पाठकगण से प्रार्थना करता है।



वियोगी विनोद।

रे विनोद तू विशेष मानवियों से,
संसार छोड़ने लगा तू जोर से।
मन में रटन आत्म की लगी,
किन्तु काया न तेरी डिगी।
जीवन धन्य बना है तेरा,
संसार के वैराग्य से भरा।
मनमन्दिर के द्वार खोल कर,
जैन शासन की शान बढ़ाई।
फिर भी हमारे हृदय दुःखमय,
विषम वियोग औ' अति छोटी वय;
पार न पाए मनुज ज्ञानमय।
गति उच्च गये होंगे सिधार,
वन्दन करो सब बार बार।
शान्तिः ! शान्तिः !! शान्ति !!!

प्रकरण ९

अभिवृद्धिरूप धर्मभावना और उसका फल

श्री विनोदकुमार की धर्मभावना मुदान में ही वृद्धि को प्राप्त होती गई। अष्टमी और पाखी के दिनों में, अगर उन्हें कोई काम नहीं होता,था तो पौषध करते थे;और मात्रु परठाने के लिए संडास का उपयोग नहीं करते थे, किन्तु बाहर जंगल में जाते थे। संक्षेप में श्रावक के द्वादशी व्रतों का कड़ाई से पालन करते थे। श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र के महा वैराग्य से भरपूर चौथे "असंखयं" अध्ययन का प्रथम चरण, "असंखयं जीविय मा पमायए" सूत्र उनकी जीभ पर महामन्त्र के रूप में सदैव प्रवर्तमान रहता था। परमार्थ उसका यह है कि वे अपनी आत्मासे बार बार कहा करते थे कि, हे जीव! तू एक क्षण के लिए भी प्रमादी मत बन क्यों कि एक बार विच्छिन्न हुई आयु फिर से जोड़ी नहीं जा सकती। मतलब यह कि मरण के लिए एक दिन ज़रूर निश्चित ही है। इस सत्य को समझकर हमेशा के लिए वे जाग्रत रहते थे।

इस जाग्रति का आगम-कथित नवतत्त्वों में से छठे संवर तत्त्व के साथ सम्बन्ध है। आगम के नियमानुसार 'समकित बद संवर' अर्थात् बिना प्रत्याख्यान के समकित का स्वरूप शुद्ध होने से, किसी भी प्रकारकी सांसारिक स्थिति में भावनिर्ग्रन्थ का सम्बोधन प्राप्त होता है। संवर तत्त्व के सत्तावन भेद हैं। उन भेदों में से बारह भावनाएँ संवर की प्राणस्वरूपाएँ हैं। प्रथम भावना 'अनित्य भावना' है। श्री विनोदकुमारने 'अनित्य भावना का सदा ही सेवन किया है अर्थात् संसार को सदा अनित्य देखा है। वह भावना :-

अपूर्व अवसर ऐसा रे। कब आयगा,
कब रे। होंगे बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो।
सर्व सम्बन्ध कुबन्धन तीक्ष्ण विदार के,
विचरेंगे कब महत्पुरुष के पंथ जो।

इस मंत्रकी आराधना के फल में धर्मभावना बढ़ती चली; और जब भी फ़ुरसत का समय प्राप्त होता था, उसे वे व्यर्थ नहीं जाने देते थे; और उस समय वे सामयिक, काउस्सग, आनुपूर्वी या धर्म-पुस्तक का वाचन– कुछ न कुछ करते ही रहते थे। अर्थात् समय समय की प्रवृत्तिमें उनका ध्येय तो आराधना के ही लक्ष्य में था।

आराधना सच्चे अरिहन्त के शिष्य को मोक्षमार्ग की ओर मोड़ती है.

संसार व्यवसाय स्वाभाविक रीति से छूटता जाता है; और मोक्ष मार्ग की सड़क की रचना होती जाती है।

संवत् २०११ के माघशुक्ल ५, ता. २८–१–'५५ के दिन, पिताजी दुर्लभजी भाई को सहकुटुम्ब, वतन को छोड़कर, सुदान (आफ्रिका) जानेका प्रसंग प्राप्त हुआ। साथ ही अ. सौ. चि. मंजुलाबहन और उनके तीन बच्चे एवं उनके पति, (श्री दुर्लभजी भाई के जामाता श्रीभूपतराय शेठ) तदुपरान्त अ. सौ. चि. सुशीला-बहन और चि. राजेन एवं अ. सौ. चि. मृदुला (चि. हसमुखराय भाई की धर्मपत्नी) और श्री विनोदकुमार की माताजी (श्री दुर्लभजी भाई की धर्मपत्नी) श्रीमती मणिबहन– ये सब वतन छोड़कर बम्बई आये; और संवत् २०११ के माघ शुक्ल ११, ता. ३–२–'५५ और गुरुवार के रोज़ स्टीम–शीप स्टेथर्ड में बम्बई से रवाना हुए; और सुखपूर्वक पोर्ट सुदान में, ता. ८–२–'५५ के रोज़ पहुँच गए। इसके दरम्यान, श्री विनोदकुमार, पोर्टसुदान में ही थे।

सुशीलाबहन सुदान में तीन मास रहीं; और उन को अब स्व-देश में जाने का था, अतः उन्हें देश में पहुँचाने के लिए श्री

विनोदकुमार को, पिताजी दुर्लभजी भाईने उन के साथ भेजा। ता. १६-५-'५५ (संवत् २०११ वैशाख कृष्ण ९, सोमवार) के रोज़, ओमदूरमान से हवाई जहाज़ में एडन रवाना हुए। एडन में उन का छः दिनतक निवास रहा। उस समय में एडन में, श्री विनोदकुमार को सख्त बुखार-एक सो चार डिग्री-आया; किन्तु उनकी धर्म की ओर बहुत स्थिर श्रद्धा होने से ज़रा भी घबराहट के सिवा अटल रहे-पथारी में सोये तक नहीं। केवल दो दिन तक डॉकटर की सलाह के मुताबिक नियमपालन किया। बुखार में से मुक्त हुए, और वहाँ से अेरोप्लेन में बम्बई आये। अन्त में दिनाङ्क २८-५-'५५ के रोज राजकोट आ पहुँचे।

श्री विनोदकुमार की सुदान की यात्रा इस समय की, एक वर्ष और नो महीने की हुई थी; और उस के बाद उनका स्वदेश में आगमन हुआ था, जिस समय में पीढी के कामों में उन्हों ने बहुत ध्यानपूर्वक काम कर के गुरुजनों को संपूर्ण संतोष दिया था।

वीराणी कुटुम्ब में धर्मभावना पूर्वपर्यायसे ही ऐसी चली आ रही थी कि बहुत-कुछ अंशों में धर्मानुरागिता कुटुम्ब के छोटे बडे सभी जीवों में प्रवर्तमान थी। और उसी न्याय से, श्री विनोदकुमार के बड़े भाई केशवलाल भाई भी बहुत धर्मानुरागी हैं। इन केशवलाल भाई के सहवास में रहनेका श्री विनोदकुमार को बहुत भाता था; और परिणामतः धर्म-भावनारूपी वृक्ष अत्यन्त अभिवृद्धि को प्राप्त हुआ।

"सवी जीव करूँ शासन रसी"-की भावना के साथ आफ्रिका की तीसरी यात्रा।

दिव्य पुरुष को देव सहाय।

श्री विनोदकुमार आफ्रिका की दूसरी यात्रा करके स्वदेश में आए। बाद में धर्म का सत्संग इतना बढ़ गया कि व्यापार से निवृत्ति प्राप्त करके केवल धर्मपरायण जीवन बीताने के

भावों के परिणाम से, धर्मभावना विस्तृत होती गई। अनेक जीव उनके उपदेश से धर्मपरायण बनकर सद्गति को प्राप्त करें; ऐसी उपदेश शैलीरूप जीवन शुरू किया। जो आए उसके साथ धर्म की ही बात करते थे। ऐसा उत्तम जीवन बीताते थे। ऐसे समय में विक्षेपकारी एक घटना घटी।

पिताजी की भावना, उनके जीवन को एक आदर्श व्यापारी बनानेकी थी। अतः श्री विनोदकुमार को पोर्टसुदान आनेकी आज्ञा दी। इस आज्ञा को मान्य करने में उनका कोई अनुठा संकेत था। पिताजीने खास तो सफर करने की इसलिए आज्ञा दी थी कि, श्री विनोदकुमार की परमीट की समयमर्यादा पूरी हो रही थी; और 'रिन्यू' करवाने की परम आवश्यकता थी। साथ ही साथ व्यापार में जोड़े जायँ तो अच्छा हो—ऐसी भी पिताजी की इच्छा थी।

इस स्थल पर दूसरी यात्रा में श्री विनोदकुमार, जब पोर्टसुदान थे, तब एक बनाव बना था, वह जानने लायक होने से, लेखक पूर्ण प्रेम से उसे पेश करता हैं; क्योंकि उस घटना को तीसरी यात्रा के सांकेतिक बनाव के साथ सम्बन्ध है कि जिस घटना का स्वरूप दिव्य देव सहाय जैसा है।

उच्च कक्षा के अधिकारी के साथ सम्बन्ध।

दूसरी यात्रा के समय, जब पोर्ट सुदान में काम करते थे, तब उनके हाथों कस्टम का माल 'क्लियर' करवाने का काम था। अतः वह काम तो बन्दर ऊपर का ही था! एक समय ऐसा हुआ कि इजिप्त के उच्च अधिकारी कि जिनका नाम कर्नल मोहमद अलसलाह था, उनके साथ सम्बन्ध, संयोगवशात् हो गया।

इन अधिकारी साहब को पोर्टसुदान में घूमने की इच्छा थी, यह बात श्री विनोदकुमार को जानने में आई। अतः उनके पास जाकर बहुत विवेकपूर्वक उनसे कहा कि, साहब! आप चाहते हैं,

उस कार्य में मैं मदद कर सकता हूँ। अगर आप को कुछ हरकत न हो, तो पधारें। अधिकारी साहबने आनन्दपूर्वक श्री विनोदकुमार की इस भावना का स्वीकार किया; और श्री विनोदकुमारने उन को अपने मोटर में लिया, और सारा गाँव बताकर, उनकी भावना को पूरा किया। अपने घर पर भी उन्हें ले आये, और प्रेमपूर्वक नाश्ता (जलपान) कराया। इतना ही नहीं, उन्हें विदा करने के लिए बन्दर पर श्री विनोदकुमार गये।

इन अधिकारी के साथ एक दूसरा व्यक्ति भी था– दोनों का प्रेम सम्पादित किया। इन अधिकारी के ऊपर श्री विनोदकुमार के विनय–विवेक-गुण की उच्च प्रभावपरम्परा पड़ी। वे बहुत खुश हुए। विनोदकुमार की शुद्ध हृदय से तारीफ़ की। इजिप्त आनेका हार्दिक आमन्त्रण भी दिया, कि जो आमन्त्रण, श्री विनोदकुमार के पासपोर्ट में ही लिख दिया। ये दोनों आदमी इजिप्त के बन्दरी विभाग के अधिकारी थे, कि जो श्री विनोदकुमार को निम्नलिखित सन्देश देकर विदा हुए। वह अंग्रेजी में इस प्रकार है :–

Caps M. El. Mallah,

Best wishes for you, and hope to see you at our country Egypt D 12-3-54.

अर्थः– मैं कर्नल महमद–अल–मलाह, शुभेच्छा के साथ आशा करता हूँ कि, हमारे देश में आप आएँ; और हमारा देश देखें.

(इजिप्त केरो ता. १२–३–'५४)

इजिप्तकी सांकेतिक यात्रा और देवसहाय।

इस तीसरी यात्रा का खास कारण ऊपर कहे हुए एक उच्च अधिकारी के नये सम्बन्ध से, श्री विनोदकुमार को प्राप्त हुआ। आमन्त्रण के अनुसार पहले इजिप्त में इन अधिकारी साहब की मुलाक़ात लेकर, बाद में पोर्टसुदान में प्रविष्ट हो कर पिताजी से कहने का निश्चय उन्होंने कर दिया था कि–"अब मुझे व्यापारी

व्यवसाय से निवृत्त होकर अपना जीवन धर्ममय बनाना है; और मैं वापिस स्वदेश जाने की इच्छा रखता हूँ" संकेत के अनुसार वतन से बम्बई आये। पहले कर्नल साहब से मिलने के लिए केरो (इजिप्त) का टिकट लिया, और बम्बई से प्लेन (ऐरोप्लेन) में केरो पहुँचे। कर्नल साहबने दिये हुए पते के अनुसार, केरो के एरोड्राम के ऊपर उतरकर, वे आलेकझान्ड्रिया की गाड़ी पकड़कर आलेकझाड्रिया आये।

स्थल अज्ञात था, और इजिप्त का सफ़र प्रथम बार ही था, अतः वहाँ से मेजर साहब के निवासस्थान तक पहुँचने के लिए टेक्सी वाले के साथ, वे उस के सम्बन्ध में बातचीत करते थे। यह बातचीत, एक अन्य अधिकारी साहबने सुनी, और श्री विनोदकुमार से पूछा कि आप को कहाँ जाने का है। इन अधिकारी को, श्री विनोदकुमार ने पासपोर्ट के ऊपर लिखा हुआ निमन्त्रण और साहब का पता पढ़ाकर वहाँ जाने की इच्छा प्रदर्शित की।

इन अधिकारी साहब ने बताया कि कर्नल साहब अभी यहाँ नहीं हैं; परन्तु यहाँ से साठ मील दूर दूसरे स्थल पर हैं। श्री विनोदकुमार असमंजस में पड़े कि, अब क्या किया जाय? उनको यह कहाँ से पता हो सकता था कि, अपने जीवन में दैवी सहायता काम कर रही है?

सांकेतिक घटना।

घटना ऐसी घटी थी कि, इन अधिकारी साहब को बुलाने के लिए कर्नल साहब महमद अल–मलाह का मोटर आया था कि जिन से मिलने के लिए, श्री विनोदकुमार को जाना था।

मानो मोटर श्री विनोदकुमार के लिए दैव ने भेजा हो, इस तरह अधिकारी ने श्री विनोदकुमार के आश्चर्य के बीच बताया कि, "आप को असमंजस में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। कर्नल सहबकी गाड़ी बुलाने के लिए यहाँ आयी है, मुझे

भी वहीं जाना है, अगर आप को भी वहाँ आना हो, तो मेरे साथ गाड़ी में चलिए"।

श्री विनोदकुमार मोटर में बैठे, और भावना से अनुसार कर्नल साहब से मिले।

यह घटना साधारण आश्चर्यकारक नहीं है, क्यों कि ऐसे अनजान आरब मुल्क में संयोग ऐसे थे कि, श्री विनोदकुकमार की भावना कभी पूरी हो सकने वाली नहीं थी; फिर भी दैवसहाय मिल गई, और भावना पूर्ण हो गई।

इस फलसर्जन के भीतर श्री विनोदकुमार की कौन सी भाव-शक्ति ने कार्य किया था? इसका सही कारण यह है कि, श्री विनोद-कुमार, स्वदेश में से इस मुलाकात के लिए रवाना हुए, तब उनकी भावना, इस अनार्य देश के आरब को 'अहिंसा धर्म' समझाने की थी।

श्री विनोदकुमार की आत्मा तो भाव से षट्काय जीव की पूरी रक्षक बन गई थी। उनके रोम रोम में अहिंसा धर्म का रक्त बहता था; अतः मित्र से मिलने की भावना भी परिपूर्ण हुई, और भावनानुसार इन आरब मित्र के पास अहिंसा धर्म का अद्वैत स्वरूप पेश किया। इन अधिकारी महाशय के साथ बहुत धर्मचर्चा की। धर्मचर्चा के अलावा एक क्षण तक व्यर्थ गँवाया नहीं।

इस समय इजिप्त में बहुत ठण्ड थी, फिर भी ये भावसाधु उस ठण्ड की परवाह तक नहीं करते थे। उन के पास तो केवल सादे सूती कपड़ों में लँगे, कफनी और कब्जे के सिवा, इस ठण्डे देश की शीतलता में शरीररक्षक एक भी कपड़ा नहीं था।

कर्नल साहब का प्रेम, श्री विनोदकुमार की ओर इतना बढ़ा कि एक गरम स्वेटर, उनकी अनिच्छा होते हुए भी पहनाया। कर्नल साहबने इन दिव्य पुरुष का बहुत सत्कार किया। ध्यानपूर्वक उनकी धर्मभावना की बातें रसपूर्वक सुनीं, और दोनों मित्र प्रेम की अत्यन्त वृद्धि करके बिदा हुए।

श्री विनोदकुमार वहाँ से सुदान आने के लिए आलेकझांड्रिया आए और अेरोप्लेन का टिकट लिया और खर्तुम आए। उस समय पिताजी अमदुरमान (सुदान) में ही थे।

इस सुन्दर मुल्क में नाइल नदी वहती है। इस नदी का पट बहुत विशाल है। एक किनारे अमदुरमान नामका शहर है, कि जहाँ वीराणी कुटुम्व का व्यापार है, और दूसरे किनारे खार्तुम शहर है। मुल्क अद्भुत सौन्दर्ययुक्त मालूम पड़ता है।

विनोदकुमार से मिलने के साथ ही पिताजीने पूछा कि, भाई! तुम को केरो क्यों जाना पड़ा था? उत्तर में श्री विनोद-कुमार भाईने बताया कि 'मैं इजिप्त में कर्नल साहब से मिलने के लिए गया था। इस मुलाकात का मेरा हेतु, मित्रभाव से कर्नल साहब से मिलकर अहिंसा धर्म समझाने का था। मित्र की ओर जो फर्ज होना चाहिए, मैंने बजाया। मेरी आत्मा इससे कृत-कृत्य हुई। केरो जानेका यही कारण था।"

पिताजी की इच्छा थी कि, विनोदकुमार व्यापार में काम करें, तो बहुत अच्छा हो; किन्तु श्री विनोदकुमार ने विनय से पिताजी की इच्छा का अस्वीकार किया। और आगे बताया कि, "धर्मशास्त्र का मेरा अध्ययन, अभी अपूर्ण है—अभी अध्ययन चालू है।" साथ ही साथ निवृत्त होने की भावना का निर्देश भी किया। उसके बाद पचीस दिनों तक सुदान में रहे, और उन दिनों का सभी समय धर्मध्यान को समर्पित किया। व्यापारी कार्यवाही का लेश स्पर्श भी उन्होंने नहीं किया। इतने में पिताजी को वतन में आनेकी जरूरत उपस्थित हुई; अतः उनके साथ वतन में आए। संवत् २०१२ के चैत्र शुक्ल ३, ता. १३-४-'५६ और शुक्रवार के दिन, स्टीमर 'एशिया' में से बम्बई उतरे।

नोट :- इस प्रकरण की घटना, लेखक के हाथों में जब लेखन के लिए सुपुर्द की जाती है, तब श्री विनोदकुमार के पिताजी

दुर्लभजी भाई वीराणी साश्रु नयनों से निम्नलिखित नोट देते हैं :—

"श्री विनोदकुमार की धर्माभ्यास की तमन्ना मेरे अनुभवानुसार, जब अपने अन्तःकरण में श्री विनोदकुमार के दर्शन कराती है, तब मुझे अपार दुःख होता है।

मैं शुद्ध अन्तःकरण से स्वीकार करता हूँ कि बार बार मैं श्री विनोदकुमार के धर्माभ्यास की अड़चनों का निमित्त बनता था। मेरी इस गलती की जब जब मुझे स्मृति आती है, तब अश्रुपात के साथ मेरा हृदय अपने से कहता है—अपने घर पर अवतरित इस दिव्य पुरुष को मैंने नहीं पहचाना और प्राप्त पारसमणि को यों ही फेंक दिया—इन शब्दों की स्मृति में कभी कभी गहरे निःश्वासरूप से अन्तःकरण में से चित्कार बाहर निकलता है।



श्री विनोदमुनि का सांसारिक अवस्था में मनोमन्थन ।

१ जैनागमों की ओर (शास्त्रों के प्रति) अप्रतिम श्रद्धा

२ दीक्षांगीकार के अधिकारी होने के लिए ज्ञान अभ्यास की कहाँतक जरूरत?

३ कम से कम कितने भवों में मोक्षप्राप्ति हो सकती है? इसी भव में क्यों नहीं?

प्रकरण ६

मुनि श्री. विनोदकुमार के समस्त जीवन में प्रवर्तमान जाग्रत् दशा या आगे के सभी प्रकरणों का रहस्यदर्शन।

पूर्व-भव की तपसंयमकरणी के फल में, इस संसार के बेजोड़ सुख प्राप्त करानेवाले संयोगों में माता के गर्भ से उत्पन्न विनोदकुमार, जब माता के गर्भ में आते हैं, वह साल १९९२ का था। उस समय इटाली एबीसिनियन युद्ध शुरू हुआ था। युद्ध के कारण व्यापारी वर्ग की ऋद्धि-सिद्धि में वृद्धि हुई थी। उस काल में इस उत्तमलक्षणयुक्त महापुरुष का इस लोक में आगमन होता है। इन संयोगों से सिद्ध होता है कि, कोई कर्मशूर माता के गर्भ मे आया है, या धर्मशूर आया है। किन्तु ऐसे उत्तम शास्त्रोक्त लक्षणों से देखने की बुद्धि का, जड़वाद के कालने लोप कर दिया है। पुरुष की बोहत्तर कलाएँ और स्त्रियों की चौसठ कलाएँ जिस समय में प्रवर्तमान थीं वह-आज से दो-ढाई हजार वर्षों का काल महाविज्ञान स्वरूप था। अगर उस दिव्यकालमें ऐसे दिव्य पुरुष का जन्म हुआ होता, तो प्रज्ञापूर्ण माँ-बाप ने गर्भ में आने के साथ ही लक्षणों से पुत्र के गुणों को समझ लिया होता। यह जरूर प्रतीति की जा सकती है कि, शास्त्र न्याय से, यह पुरुष जब गर्भ में आया, तब माताजी को कोई उत्तम स्वप्न भी आया होगा; किन्तु युगप्रभाव से माता-पिता इस बात को पहचान न पाये। फिर भी संयोग सिद्ध करते हैं कि, युद्ध के युग में कर्म के साथ लड़ने के लिए इस दिव्यपुरुष का इस लोक में अवतरण हुआ था।

बिलकुल छुटपन से ही पूर्वभव के इस महातपस्वी ने धर्म के साथ प्रेम जोड़ दिया, जब कि उम्र उसकी केवल चार ही साल

की थी। तत्सम्बन्धी लक्षण, आगे कहे गए हैं। इन संयोगों के बीच, लेखक यह सिद्ध करना चाहता है कि श्री विनोदकुमार का संसारी जीवन तो नामगोत्र कर्म के ऊपर ही अवलम्बित था, जब कि उन की आत्मा तो संसार से पर साधुभाव से भाव-निर्ग्रन्थरूप से प्रवर्तमान थी।

माता की कुक्षि में आने के साथ एकसूत्रभाव—टूटी आयु कभी जुड़ती नहीं, अतः हे जीव! तुम्हें प्रमादी बनना उचित नहीं है—धारण कर के अवतार लेने वाले इन महर्षि को, केवल आगम प्रवचनों के अतिरिक्त कोई भी पदार्थ आकर्षित नहीं कर सकता था। इस के प्रमाण में बाद के प्रकरण जब लिखे जाएंगे, तब पाठकगण को ज़रूर ही विनोदकुमार का अद्भुतरसमय जीवन आकर्षित करेगा। उस पुरुष का व्यापार धर्मकथाएं थीं, और कुछ नहीं। बचपन से स्वर्गवास पर्यन्त समस्त समय, सम्यग्दर्शन के लक्षणरूप पर्याय के बिना टूटे ही चलता रहा। उस स्थिति को श्री आवश्यक सूत्र के दंसण समकित के पाठ के साथ सम्बन्ध है, उस में समकित के लक्षण निम्नांकित रूप से दिए गए हैं। (देखिए प्रतिक्रमण)

"परमत्थ संथवो वा सुदिट्ठ, परमत्थ सेवणा वावि;
वावन्न कुदंसण वज्जणा य, समत्त सद्दणा।

भावार्थ :— समकित जीव, भली दृष्टि से परमार्थ का ही समागम करता है; परमार्थज्ञ की ही सेवा करता है; सम्यग्दर्शन रहित या कुत्सित दर्शनवाले का त्याग करता है—ये चार सम्यक्त्व की श्रद्धाएं हैं।

क्रमशः जीवन ऐसा बन गया कि, मोक्षमार्ग के अलावा कोई भी बात उन्हें पसन्द नहीं थी; संसारी जीवों का परिचय उन्हें अच्छा नहीं लगता था। किन्तु धर्मकथा करनेवाला संसारी हो या साधु—उसीका सत्संग उन्हें अच्छा लगता था। भगवान के प्रवचनों

में अनुरक्त यह पुरुष सचमुच ही पूरा धर्माराधक था। उस धर्म का दिग्दर्शन, आवश्यक सूत्र यानी प्रतिक्रमण के पाँचवें सूत्र में किया गया है। संक्षेप में उसका रहस्य नीचे दिया जा रहा है :-

"नमो चउवीसाए तित्थयराणं, उसभाइमहावीर-पज्जवसाणाणं, इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं, अणुत्तरं, केवलियं, पडीपुन्नं, नेयाउयं, संसुद्धं, सल्लगत्तणं, सिद्धि-मग्गं, मुत्तिमग्गं, निज्जाणमग्गं, निव्वाणमग्गं, अवितहम-विसंधि सव्वदुक्खप्पहीणमग्ग, इत्थं ठिआ जीवा सिज्झंति बुज्झंति, मुच्चंति, परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति तं धम्मं सद्दहामि, पत्तियामि, रोएमि फासेमि पालेमि अणुपालेमि ..

भावार्थ :- श्री० ऋषभदेव भगवान से लेकर महावीर भगवान तक के चौवीस जिनों की मैं पर्युपासना करता हूँ कि जिनके प्रव-चन आगमरूप से प्रवृत्त हैं, वे निर्ग्रन्थ प्रवचन सही हैं, अनुत्तर हैं, केवली भाषित हैं, परिपूर्ण हैं। वही न्याय का मार्ग है त्रिपरम-शुद्ध हैं, शल्य के काटनेवाले हैं, सिद्धि के मार्गरूप हैं मुक्ति के मार्गरूप हैं, निर्वाण के मार्गरूप हैं। उनमें मेरी आत्मा को बिल्कुल संशय नहीं है। मुझे पूर्ण प्रतीति है कि, सभी दुःखों से मुक्त बनानेकी महाशक्ति के वे स्वरूप हैं। उस धर्म में रहे हुए जीव सीझते हैं, बूझते हैं, कर्म से मुक्त होते हैं, और शीतल बन जाते हैं। उस धर्मकी मेरी आत्मा श्रद्धा करती है-प्रतीति करती है।

उपर्युक्त महत्त्व से पूर्ण पाठरूप
श्री विनोदकुमार का समस्त जीवन ।

बचपन से शालाकीय अभ्यास तो करते ही थे, पर मुख्यता जैन पाठशाला में सूत्र पढ़नेकी, साधु-साध्वियों के शेषकाल चातु-र्मासों में व्याख्यान सुननेकी परमासक्ति थी। साथ ही साथ पूर्ण परिचय करके विद्याभ्यास करना, नित्यनियमानुसार

सामायिक प्रतिक्रमण और अन्यान्य धर्मानुष्ठानों की सेवना करते रहना, जहाँ तक बन सके, तपस्या करना–इस रीति से छोटी उम्र से ही यह कुलदीपक पुरुष धर्मानुरागिता से अपनी आत्मा को ज्ञात कराता था।

समस्त गोंडल सम्प्रदाय के साधुओं और साध्वियों के बार बार दर्शन करने के लिए निकलते थे, और वहाँ जा कर ज्ञानाभ्यास की वृद्धि करते थे। शास्त्राभ्यास के लिए सुप्रसिद्ध राजकोट के डॉ. एन. के गाँधी का तो बहुत ही संपर्क किया था। गुरुके नाते उन्हें माननेवाली और विनयपूर्वक उनसे शास्त्राभ्यास करनेवाली महासतीजी श्री. झवेरबाई स्वामी और महासतीजी श्री. मीठीबाई स्वामी की ओर उनका बहुत अनुराग था। अेक समय कुछ दीक्षाभिलाषी बहनों के साथ महासतीजी श्री. झवेरबाई स्वामी के दर्शन करने गए थे, और उन्होंने विदुषी महासतीजी के व्याख्यान का बहुत ही लाभ उठाया था। महासतीजी श्री. समरतबाई स्वामी के पास से भी ज्ञान लेने के लिए प्रयास किया था। बोटाद संप्रदाय के पू. आचार्य श्री. १००८ माणेकचन्द्रजी महाराज की ओर उनका धर्मानुराग सुन्दर रीति से प्रवर्तमान था। मुनिजी के आगमप्रवचन श्री. विनोदकुमार को अतिप्रिय लगते थे। पतियाला की मेट्रीक की परीक्षा के बाद, लुधियाना (पंजाब) में मुनि श्री. १००८ आत्मारामजी महाराज अपने शिष्यगण के साथ विराजमान थे. उनके दर्शन करके व्याख्यान वाणी का भी लाभ लिया था।

एक बार बम्बई में संवत् २०११ के वर्ष में श्री. धर्मदासजी सम्प्रदाय के श्री, लालचन्द्रजी महाराज का सत्संग हुआ। उस समय महाराजश्री चींचपोकली में शिष्यगण के साथ विराजमान थे। श्री, लालचन्द्रजी महाराज उत्तम कोटि के साधु थे। उनके समस्त

कुटुंबने दीक्षा का अंगीकार किया था। एक स्वयं, तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ इस प्रकार छः भव्य आत्माओंने संयम अंगीकृत किया था। वे समस्त जीवन ज्ञानाभ्यास में बीताने की तमन्नावाले थे। अन्तमें खीचन (राजस्थान) में ये महापुरुष, अपने तीन शिष्यों के साथ शास्त्र के प्रखर अभ्यासी श्री समरथमलजी महाराज के पास अभ्यास करने के लिए गए थे। इससे सिद्ध होता है कि इन मुनि का आहार व्यवहार आगमों के पूरे कायदों के अनुसार ही होना चाहिए। क्योंकि पू. श्री. समरथमलजी महाराज की आत्मा का स्वरूप श्री सुयगडांगजी सूत्र में परिज्ञाका स्वरूप बताया है उसके न्याय से इस विषम काल में जरूर आगमविहारी है। और भी स्थानकवासी, सम्प्रदाय में वे उच्च कक्षा में हैं।

बम्बई में इन योगी पुरुष के सत्संग के परिणाम से उनके स्वभावगत आकर्षण से श्री. विनोदकुमार को आकर्षित किया और धर्मस्नेह की गांठ इस तरह संलग्न हुई कि, श्री विनोदकुमार के दीक्षा के भाव उत्तरोत्तर बढ़ते ही चले। एतत्सम्बन्धी ज्यादा हकीकत, आगे के प्रकरण में दी जाएगी।

प्रखर निश्चयी पुरुष।

उपर्युक्त जीवन सचमुच ही बेजोड माना जा सकता है।

गाथा :- सुत्तेसु यावी पडिबुद्ध जीवी,
न वीससे पंडिए आसुपन्ने
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं,
भारंडपक्खी व चरेऽपमत्तो ॥

भावार्थ :- द्रव्यनिद्रा की सोयी हुई, पर भावनिद्राकी जाग्रत् आत्मा, जो 'असंखयं जीविय मा पमायए' मंत्र की आराधक हो, वह पंडित कहलाने योग्य है। (पंडित विनोदकुमार) ऐसे पण्डित जीव, क्षणिक आयु का ज़रा भी विश्वास नहीं करते हैं, और आत्मा को एक पल भी धर्म से वंचित नहीं रहने देते, वे सिद्ध ज्ञानी

कहे जाते हैं। (श्री विनोदकुमार सिद्धज्ञानी) ऐसे पंडितों और सिद्धज्ञानियों को संपूर्ण ज्ञान है कि मरणकाल एक घोर मुहूर्त है, कि जब जीवन रहित शरीर बन जाता है। (मरणकाल सिद्ध करता है कि जीवन और शरीर अलग अलग हैं) अतः पंडित लोग मरण-पर्यन्त भारण्ड पक्षी के दृष्टान्त से पाप से शंकित होकर सदा अप्रमत्त दशा में प्रवर्तमान होते हैं। श्री विनोदकुमार का विचरण, इस लोक में बिल्कुल पाप से शंकित था; उस के समर्थन में, इस अध्ययन में दर्शित भारंड पक्षी का दृष्टान्त अतीव योग्य है। वह निम्नलिखित है।

जिस प्रकार भारंड पक्षी (यह पक्षी मनुष्यलोक से बाहर है) जब अपने स्थान से निकलकर आकाश की ओर उड़ता है, तब यह चतुर पक्षी दशों दिशाओं में अवलोकन करके बाहर निकलता है कि जिससे शिकारियों का भोग न बनना पड़े, उस प्रकार पंडित लोग कभी दुःखपूर्ण मृत्यु से नहीं मरते।

प्र० सच्चा सुखी कौन है?

उ० हसते मुँह से सुखसमाधि से मरण को भेंटता है, वही सच्चा सुखी है।

श्री विनोदकुमारने छोटी सी चौदह वर्ष की आयु में विदेशगमन किया; पर विदेश में या वतन में आकर इस आध्यात्मिक पुरुष ने धर्म को एक पल भी विस्मृत नहीं किया। इतना ही नहीं, पर योरप की असाधारण शीत में मामूली कपड़े हमेशा नियमानुसार धारण करके आवश्यक क्रियाएँ कीं। प्रमाणपत्र इसका श्री दौलतभाई द्वारा कथित, आगे कहा जायगा।

अन्तिम जीवन में जैन धर्म के साधु के लिए निश्चित, कठिन बाईस परिषह हैं-कि जो परिषह अग्निपरीक्षा स्वरूप हैं—वे जीतने लगे; और कर्मों का पराजय कर, दीक्षा के लिए सभी तैयारियां करने लगे। संसार के मोह में फँसे हुए मातापिता, इन परम-

पुरुष के आत्मअध्यवसायों को पहचान न पाये। कहां से वे समझ भी सकते थे। श्री विनोदकुमार की आत्मा संपूर्ण शुद्ध थी; और मातापिता का कोष्ट शुभ का घर था। इस अन्तर को जाँचने के लिए लेखक पाठकगण से अनुरोध करता है कि, द्वदशांग न्याय का, छेदसूत्रस्वरूप 'दशाश्रुतस्कन्ध' नामका ग्रन्थ है, उसे सूक्ष्मदृष्टि से देखकर पाठकगण निणय करें। क्यों कि नियाणा के अधिकार से इस महान् ग्रन्थ के दशमस्कन्ध म जगत में अद्वैतवर्णरूप श्री श्रमण भगवंत महावीर का अपने शिष्यगण से उपदेश है; और वह उपदेश चारों तीर्थों को समझ लेने योग्य है, कि जिस में अपनी आत्मा का दर्शन होता है। भगवान का यह बोध दर्पण–आदर्श–रूप है। दर्पण में जैसा पदार्थ हो, वैसा ही दीख पड़ता है।

अन्त में तीसरी यात्रा खत्म करके वतन में आए। वाद में आज्ञाव्यवहार को अधीन रहकर मातापिता के समक्ष दीक्षा की आज्ञा प्राप्त करने के लिए अनेक प्रयत्न किए; पर मातापिता ने मोहावेश में ध्यान नहीं दिया। वे कहाँ से ध्यान दे सकते थे? वे असाधारण ऋद्धिसिद्धि के मोह में संसारसुखों का आस्वादन करने में मग्न थे। अतः उन्हें तो श्री विनोदकुमार दीक्षा लेने से पहले प्राप्त ऋद्धिसिद्धि का आस्वादन करने के वाद दीक्षा लें, ऐसी भावना हो सकती थी। संसार का धर्म यही है। अतः विनोदकुमार के अनुरोध के उत्तर में पिताजी का यही कहना स्वाभाविक था कि, अभी दीक्षा का समय आया नहीं है भाई, धर्माभ्यास किया करो। इस प्रकार बार बार मनाही उन्हें सुननी पड़ी, परन्तु श्री विनोदकुमार की आत्मा तो दीक्षा की ओर प्रयाण कर रही थी। घटना घटने की ही थी। भावि की प्रबलता के आगे किसीका भी चल नहीं सकता। अतः श्री आचारांगसूत्र में भगवान आदेश करते हैं कि,

"दीक्षा लेने तैयार होनेवाले को मातापिता की आज्ञा प्राप्त करनी मुश्किल होती है; पर वैरागी वैराग्य से विचलित नहीं होता। वैराग्य की ओर सतत आकर्षण।

श्री विनोदकुमार को उपर्युक्त प्रकार से सत्संग के सिवा कोई भी चीज प्रिय नहीं थी। अतः साधु सन्तों के दर्शन तो उनका प्रधान कर्तव्य बना था।

एक समय पिताजी समस्त कुटुम्ब के साथ, बोटाद सम्प्रदाय के पू. महाराज साहब १००८ श्री माणेकचन्दजी महाराज, पालियाद में अपने शिष्यगण के साथ विराजमान थे, उन के दर्शन के लिए गए। तब श्री विनोदकुमार पिताजी के साथ थे। और होना ही चाहिए उन्हें। इस प्रसंग पर इस परमवैरागी आत्मा को, इन महावैरागी महात्मा की अपूर्व वाणी सुनने का लाभ प्राप्त हुआ। वाणीश्रवण के साथ सातवें अप्रमत्त संयति गुणस्थान को स्पृष्ट हो गए।

कुटुम्बने वापिस राजकोट आने की तैयारी की, तब श्री विनोदकुमारने मातापिता से अनुरोध किया कि, मुझे तो उन महामुनि की सेवा में ही रहना है, आप सब आनन्द से लौट सकते हैं। परन्तु मातापिता इस भेद को नहीं समझ पाए; और श्री विनोदकुमार से आग्रह किया कि, तुम्हें हमारे साथ ही आना चाहिए।

संसार की ओर उदासीन दृष्टिसे मातापिता के आग्रह को स्वाधीन वे हो गए, और समस्त कुटुम्ब वापिस राजकोट आ गया। उस समय, श्री विनोदकुमार की वय केवल चौदह साल की थी। इस अप्रमत्त संयति गुणस्थान के भाव समझने के लिए पाठकगण के पास गुणस्थानद्वार की श्रेणी की आभास लेखक पेश करता है। क्यों कि ये गुणस्थान, इस ग्रन्थ के प्राणस्वरूप हैं।

द्वादशांग, अनेक चमत्कृतियों से पूर्ण महारसमय शास्त्र हैं। कालप्रभाव में जैसे सूर्य के आगे बादल छा जाते हैं, उस प्रकार

इन महासूत्रों का ज्ञान विषम काल के बहुकर्मी जीवों को प्राप्त होने में अनेक अन्तराय खड़े हुए हैं। ऐसे द्वादशांगों की अनेक चमत्कृतियों में से जीवों के कोठे बताता हुआ यानी (स्टेजिज़ STAGES) अवस्था भेद बताता एक महत्त्वरूप ज्ञान है। उसे गुणस्थानक कहा गया है।

द्वादशांगों में से चुनकर कृपालु आचार्योंने मुमुक्षुओं को प्रसादी रूप में ज्ञान दिया है। जिस ज्ञान को 'चौदह गुणस्थान' कहा जाता है।

द्वादशांग, लोकों का स्वरूप, अनादि, अनन्त शाश्वत न्याय से प्रकाश में लाते हैं, और इस से लोकरचना दो भेदों से समझने में आती है :- (१) सिद्धलोक, (२) संसारलोक।

संसारलोक का हमेशा विषय कषाय अग्निरूप प्रज्वलन; जब सिद्धलोक का स्वरूप सदा परम शान्ति के अनुभव स्वरूप।

ऐसे लोक के स्वरूप को समझने के लिए इन चौदह गुणस्थानों का ज्ञान बहुत मूल्यवान है। अतः लेखक संक्षेप में निरूपण करता है।

चौदह गुणस्थानों में से प्रथम गुणस्थान को मिथ्यात गुणस्थान कहा गया है। संसार के सदैव रहनेवाले अनादि-अनन्त भाव को सिद्ध करनेवाला यह गुणस्थानक है। उसका लक्षण प्रश्नोत्तरी खड़ी करके द्वादशांग प्रकाश में लाते हैं। वह निम्नरूप से है।

शिष्य पूछता है कि-'हे भगवान्। प्रथम मिथ्यात गुणस्थानक का लक्षण क्या है?

उत्तर में श्री भगवान फरमाते हैं कि, हे शिष्य! श्री वीतराग देव की वाणी से कम-अधिक, विपरीत श्रद्धा रखने को मिथ्यात कह सकते हैं।

इस प्रश्नोत्तरी में ही द्वादशांगों की अतिमहत्ता शामिल है। प्रश्नोत्तरी सिद्ध करती हैं कि, द्वादशांग शुद्ध न्यायघररूप हैं।

मिथ्यात को गुणस्थान सम्बोधन दिया गया है, अतः यह सिद्ध होता है कि, मिथ्यात यानी असत्य -- ऐसा अर्थ नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि, मिथ्यात शब्द अपमानजनक नहीं है, परन्तु तत्त्व को स्पर्श करता हुआ शब्द है। उसका सबल कारण यह है कि, यह संसार रचना गुणदृष्टि के वशमें, "जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि" रूप से निर्भर है, और वह स्थायी है। एक पक्ष, अपने प्रतिपक्ष को अपनी दृष्टि से उल्टी दिशा में खडा हुआ देखता है। मिथ्यात शब्द का दूसरा 'पाखण्डी' सम्बोधन है। सभी अपने अपने न्याय से प्रतिपक्ष को मिथ्यात्ववादी या पाखण्डी ही कहते हैं। इसका शुद्ध-न्याय निरंजन निराकार भगवान के स्वरूप में स्थित है। अर्थात् रागद्वेषरहित श्री वीतराग भाव में सत्य की पहचान है।

सांसारिक जीवों का स्वरूप सदा अपूर्ण है, भाषा नययुक्त है। अर्थात् कहने के साथ दो पक्ष आ ही जाते हैं

शब्द संख्याता हैं। और ज्ञान पर अनन्त है। ऐसे संयोगों के बीच संसार के ऐसे स्वरुप को पहचानने में कभी ही कुछ ही आत्माओं को सफलता मिलती है।

ज्ञानी लोग संसार के विषम स्वरूप को भी दोष की दृष्टि से देखने के लिए तैयार नहीं है। वे मानते हैं कि, ऐसा मिथ्यात लोक होना ही चाहिए, जिस के निमित्त से ज्ञान करके करके जीव सिद्धि को प्राप्त करते हैं।

इस प्रथम मिथ्यात गुणस्थानक की व्याख्या करते हुए आगम बताते हैं कि जहांतक जीव को परा दशा प्राप्त नहीं होती; वहाँ तक ज्ञान तरतम भावसे ही रहेगा। अर्थात् अवस्थाभेद से ही रहेगा। कम-अधिकता को तो स्पर्श किया ही करेगा। अतः अनन्त संसार में पर्यटन करानेवाली विपरीत प्ररूपणा ही है। जैसे कोई अगर कहे कि, पंचभूतों से आत्मा उत्पन्न हुई है, उनके विनाश से जीव भी नष्ट होता है, जड़ से चैतन्य की उत्पत्ति या विनाश हो,

उस मन्तव्य को विपरीतप्ररूपणा कह सकते हैं। इस प्रकार नवों तत्त्व यानी, जीव,अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्झरा, बन्ध मोक्ष की विपरीतता को ही मिथ्यात कह सकते हैं।

ऐसे विपरीतभाषी जीवों का भाषालक्षण :-

यह लोक नहीं है, परलोक नहीं है, खाओ, पीओ, मज्ञा उड़ा लो, यह भव अच्छा है, पर भव किसने देखा है ?—इस मिथ्यात गुणस्थानक की व्याख्या से निश्चित होता है कि—मिथ्यात को पहचानना जरूरी है। अतः द्वादशांग, "स्वमत" को जानकर, जगत के सभी मतों को जाननेका अधिकार देता है। परमत को स्पष्ट करनेका अधिकार नहीं देता। क्यों कि द्वादशांग में परमत के ज्ञान को शामिल करने में आया है।

द्वादशांगों की संपूर्णताको सिद्ध करता हुआ एक ही दृष्टान्त पर्याप्त है। द्वादशांग न्याय से आत्मा अकृत्रिम, अखंड, नित्य और अविनाशी है। शरीर मात्र व्यापक है। तात्पर्य कि, यदि कोई कहे कि—संसारी आत्मा कितनी ? तो निर्भयता से उत्तर देना चाहिए कि—शरीरपरिणामी !

इस प्रकार प्रथम गुणस्थान स्वरूप संपूर्ण हुआ कि—जिसका सदा स्वरूप 'संसरतीति संसारः' ऐसा है।

"सदा अनादि अनन्त संसार का स्वरूप वह खुद ही मिथ्यात गुणस्थानक है" यह और तृतीयातिरिक्त बारह गुणस्थानों को प्रतिपक्षने सम्यकत्व गुणस्थान में शामिल किया है। उन बारह में से दूसरा स्थान उन्नति के लिए दूसरा नहीं है, पर चढ़कर गिरने की अपेक्षा से दूसरी भूमिकारूप है।

तीसरा गुणस्थानक सम्यक्त्व का दर्शन करता है। सम्यक्त्व को स्पृष्ट नहीं होता। इन दो गुणस्थानों में जीवों की दशा मोक्ष गमन की प्रतीति से युक्त होनेपर भी बहुकाल तक जन्म मरण करने के बाद ही अवश्य मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।

दूसरे गुणस्थान (उपर्युक्त) के लक्षण निम्नलिखित हैं :—

दूसरे गुणस्थानक का नाम 'सास्वादान गुणस्थानक' है, क्यों कि उस गुणस्थानक का लक्षण समकित वमन कारक जीवों की पहचान करानेवाला है। क्यों कि अनेक जीव सम्यक्त्व प्राप्त कर के भी मोह में फँसकर समकित रूपी रत्न गँवा देते हैं। उसके लिए नीचेका दृष्टान्त अनुरूप है :—

जीवरूप आम का पेड़ है, परिणामरूप शाखा है, समकितरूप फल मोहरूपी वायु से टूटा। मिथ्यात्वरूप धरती में आया नहीं है—अभी बीचमें है, वहाँ तक सास्वादान अर्थात् दूसरा गुणस्थान। आ पड़ा अर्थात् मिथ्यात—प्रथम गुणस्थान।

तीसरा मिश्र गुणस्थान श्रीखण्ड के दृष्टान्त से स्पष्ट होता है। श्रीखण्ड खट्टा और मीठा होता है। संसार प्रियता खट्टापन है और धर्मप्रियता मीठापन है।

चौथे गुणस्थानक का नाम 'अविरति सम्यग्दृष्टि' है। अर्थात् धर्म का रंग हड्डी—हड्डी में लगा हुआ होनेपर भी पूर्व कर्म के उदय के बल से, छोटे से छोटे धर्मकार्य को भी नहीं कर सकता है, ऐसा जीव समकित पर्याय अगर न टूटे, तो उत्कृष्ट पंद्रह भवों में मोक्ष प्राप्त कर लेता है, और देवलोक की गति की ओर जाता है।

पाँचवाँ देशविरति गुणस्थानक है। अर्थात् वह श्रावक का गुणस्थानक है। इस गुणस्थान में संसार में श्री विनोदकुमार का विवरण था। एक महत्प्रत्याख्यानने लेकर श्रावक के बारह व्रत, श्रावक की ग्यारह पडिमाएँ यावत्संलेखणा सहित जो आराधन करता है, उसकी गति अवश्य ही देवलोक की होती है।

गुणस्थान की श्रेणी रचना ऐसी है कि पाँचवें से छठे गुणस्थान में नहीं जाया जा सकता। अर्थात् सातवें गुणस्थानक में स्पृष्ट हुए बिना छठे गुणस्थानक में भावनरूप साधुत्व अंगीकृत नहीं किया जा सकता। अतः सातवें गुणस्थानक का कि जिसका नाम अप्रमत्तसंयति गुणस्थानक है, प्रथमतः लक्षण दिया जाता है।

पाँच प्रमाद :– मद, विषय, कषाय, निद्रा, विकथा–इन पाँच प्रमादों से रहित अवस्था को 'अप्रमत्त संयति' सम्बोधन है। (श्री विनोदकुमार के जीवन में इस गुणस्थान का बहुत अनुभव होता है।)

छठे गुणस्थानक को साधुवेष के साथ सम्बन्ध है। बाकी के आठ से लेकर चौदह गुणस्थान, वर्तमान विषम युग में प्राप्त नहीं हो सकते। उनका वर्णन गुरुगम से जानना जरूरी है; क्यों कि उपर्युक्त गुणस्थानों को प्राप्त करने के लिए इस काल में शरीर-संपत्ति नहीं है।

उपर्युक्त सातवें गुणस्थान के न्याय से श्री विनोदकुमार, पू० श्री माणेकचन्द्रजी महाराज का बोध सुनकर, उत्कृष्ट वैराग्य में आए। उपर्युक्त सात गुणस्थानों के बाहर जाकर आठवें गुणस्थानक का स्पर्श करने के लिए अनन्त सिद्धिबल होना जरूरी है। पहले तो वज्रऋषभनाराचसंघयण का स्वामी हो, वही इस गुणस्थान को प्राप्त कर सकता है। (आठवें से चौदहवें गुणस्थान तक चन्द्रमा के प्रकाश जैसा शुक्ल ध्यान प्रवृत्त है) ऐसा उत्तम आठवाँ गुणस्थानक, सातवें गुणस्थान में धर्मध्यान में प्रवृत्त पुरुष ही जा सकता है कि जहाँ तीव्र वैराग्य की दशा में जीव ने रमणता की हो। जिन जीवों ने पूर्वभवमें बारबार वैराग्य में प्रणत होकर बाह्य–आभ्यन्तर तप से आत्मा को बहुत हीनकर्मी बनाया हो, ऐसे जीव ही आठवें, गुणस्थानक का स्पर्श कर सकते हैं। इस आठवें गुणस्थान को ऊपर के गुणस्थानों का निकटका सम्बन्ध है। अतः आठवें से चौदहवें गुणस्थान की समझ के लिए यथातथ्य व्याख्याएँ लेखक पेश करता है।

आठवां गुणस्थान :– यथा नाम तथा गुणरूप इस गुणस्थान के दो नाम हैं। 'नियट्टिबादर' यानी निवृत्त है बादर कषाय से (सूक्ष्म कषायका किला भिन्न नहीं हुआ है) बादर संपराय क्रिया से (अर्थात् मोक्षमार्ग के आवरणरूप कर्म पुद्गलों

के बादर स्वरूप को भेदने की क्रिया) हेतुको अन्तर में रख-कर श्रेणी कराए यानी आत्मा को विचार के घर में प्रविष्ट करा के आभ्यान्तर तप से आत्मा को स्थिर कर के बादर का चपलता से निवृत्त होना—उसे 'नियट्टिबादर गुणस्थानक' कहा गया है। परन्तु, सूक्ष्म किल्लेका भेदन होगा या नहीं—यह अभी आशंका ही है। अतः यह नियट्टिबादर गुणस्थानक का स्वरूप उन्नतिअवनति का आश्रित है।

इस गुणस्थान का दूसरा नाम अपूर्वकरण गुणस्थान है। उसका अर्थ यह होता है कि, आगे के अनन्तकालमें किसी भी समय पर जीव का उदय नहीं हुआ था, ऐसा पंडितवीर्य का आवरण-क्षय-करणरूप ही करण परिणामधारा वर्धनरूप श्रेणी करता है। जैसे :— चक्रवर्ती महाराज सुखपूर्वक छः खण्डों की प्राप्ति कर सकते हैं, उनके सामने कोई कुछ नहीं कर सकता। चौदह महारत्नों से दुश्मन का पराजय करते हैं इस तरह क्षायक समकितरूप दिव्य खड्ग से उत्तरोत्तर गुणस्थानों को चढ़-नेकी महाशक्ति प्राप्त कर के नवें और दशवें गुणस्थान में, मोहराजाको कैद करके बारहवें गुणस्थान में ले जाकर, सर्वथा पराजय करके, तेरहवें गुणस्थान के प्रथम समय में आत्मा का केवलज्ञान, केवलदर्शनस्वरूप बनना, और धर्मध्वजाका लहराना ही यह गुणस्थान है।

इस अपूर्वकरण गुणस्थान का स्वरूप ही 'शाश्वत जय'। इस प्रकार दो नामका कारण अब सरलता से समझा जा सकता है कि, दो प्रकार के जीवों का इस गुणस्थानमें प्रवेश है।

कुछ जीव बाहर से रागादि के ऊपर की जय तो प्राप्त कर सकते हैं; परन्तु अन्तर की माया और वेद की पीड़ा का उपशमन करते हैं, नाश नहीं कर सकते। अर्थात् विषय भोगने की आशा आच्छन्न हो जाती है, नष्ट नहीं होती। ऐसे जीवों के लिए नियट्टिबादर

पाँच प्रमाद :– मद, विषय, कषाय, निद्रा, विकथा–इन पाँच प्रमादों से रहित अवस्था को 'अप्रमत्त संयति' सम्बोधन है । (श्री विनोदकुमार के जीवन में इस गुणस्थान का बहुत अनुभव होता है।)

छठे गुणस्थानक को साधुवेष के साथ सम्बन्ध है । बाकी के आठ से लेकर चौदह गुणस्थान, वर्तमान विषम युग में प्राप्त नहीं हो सकते । उनका वर्णन गुरुगम से जानना जरूरी है; क्यों कि उपर्युक्त गुणस्थानों को प्राप्त करने के लिए इस काल में शरीर-संपत्ति नहीं है ।

उपर्युक्त सातवें गुणस्थान के न्याय से श्री विनोदकुमार, पू० श्री माणेकचन्द्रजी महाराज का बोध सुनकर, उत्कृष्ट वैराग्य में आए। उपर्युक्त सात गुणस्थानों के बाहर जाकर आठवें गुणस्थानक का स्पर्श करने के लिए अनन्त सिद्धिबल होना जरूरी है । पहले तो वज्रऋषभनाराचसंघयण का स्वामी हो, वही इस गुणस्थान को प्राप्त कर सकता है । (आठवें से चौदहवें गुणस्थान तक चन्द्रमा के प्रकाश जैसा शुक्ल ध्यान प्रवृत्त है) ऐसा उत्तम आठवाँ गुणस्थानक, सातवें गुणस्थान में धर्मध्यान में प्रवृत्त पुरुष ही जा सकता है कि जहाँ तीव्र वैराग्य की दशा में जीव ने रमणता की हो। जिन जीवों ने पूर्वभवमें बारबार वैराग्य में प्रणत होकर बाह्य–आभ्यन्तर तप से आत्मा को बहुत हीनकर्मी बनाया हो, ऐसे जीव ही आठवें, गुणस्थानक का स्पर्श कर सकते हैं । इस आठवें गुणस्थान को ऊपर के गुणस्थानों का निकटका सम्बन्ध है। अतः आठवें से चौदहवें गुणस्थान की समझ के लिए यथातथ्य व्याख्याएँ लेखक पेश करता है ।

आठवां गुणस्थान :– यथा नाम तथा गुणरूप इस गुणस्थान के दो नाम हैं । 'नियट्टिबादर' यानी निवृत्त है बादर कषाय से (सूक्ष्म कषायका किला भिन्न नहीं हुआ है), बादर संपराय क्रिया से (अर्थात् मोक्षमार्ग के आवरणरूप कर्म पुद्गलों

का आलम्बन लिया हुआ होता है। अगर उस गुणस्थान में से गिरकर आठवें गुणस्थान पर जा कर कषायभाव का प्रगटन करे, तो उपशम भावमें से परिवर्तन होकर आत्मा का स्वरूप क्षायकभावस्वरूप बन जाय तो फिरसे चढ़ते चढ़ते दशवें गुणस्थान पर आकर बारहवें गुणस्थान को पकड़ लेता है। किन्तु यदि उपशम भावरूप ही आत्मा रहे तो दशवें गुणस्थानमें सूक्ष्म लोभ का उदय होता है। शरीर के ऊपर ममत्व होता है, और अन्त में गिरते गिरते विषयकषायस्वरूप आग प्रकट होती है। इस प्रकार सूक्ष्म लोभरूप एक स्फुलिंग दावानलरूप बन जाता है, और कर्म, सभी मेहनत को धूल में मिला देते हैं। वह भी यहां तक कि सीधे ही जीव प्रथम गुणस्थानमें चला जाता है। विषमकाल में फल ऊंची श्रेणी में से भी जीवको नीचे गिराकर सभी ऋद्धि बलात् लेकर जीवको केवल कंगाल स्वरूप बना देता है ऐसे विषयकषाय के खराब फल को कौन समझा? श्री वीराणी कुटुंब का वीर विनोदकुमार, कि जिसने मुनिव्रत धारण करके आत्मा का कल्याण कर लिया।

उपर्युक्त सिद्धान्त को सिद्ध करता हुआ श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र का तेरहवाँ अध्ययन चित्तसंभूति का है, वह इस तत्त्व को समझाने में अति सहायभूत है। ब्रह्मदत्त अपने पूर्वभव के मित्र चित्त को सम्बोधित करके कहता है कि, हमने आगे पाँच भवों में अनुरक्त भाव से एक दूसरे में परिणत होकर भव किये हैं। प्रथम भवमें दशार्ण देश के राजाके दास रूप से हम दोनों भाई थे। वहाँ से च्युत होकर हम दोनों स्नेह की ग्रन्थि से पूर्णतया जुड़े हुए कालिंजर पर्वत में मृगरूप में थे। वहाँ से स्नेह बढ़ने से गंगा नदी के किनारे हम दोनों हंस रूप में थे। चौथे भव में हम एक चांडाल रूप में काशीभूमि में–वाराणसी नगरी में–चंडाल के कुल में उत्पन्न हुए। वहाँ हमें उत्तम प्रकार के साधुओं का योग हुआ। धर्मश्रवण कर प्रव्रज्या धारण कर, यथानाम

गुणस्थान, सम्बोधित किया गया है। जैसे साँड़सी के दो प्रकार होते हैं, एक कोयला उठाया जाता है, और एक छोटी से हीरा उठाया जा सकता है। उसे 'समानी' कहते हैं। इस नियम के अनुसार 'नियट्टिबादर गुणस्थान' कोयला उठाने णा साधन है, और अपूर्व-करण गुणस्थान हीरा उठाने का साधन है।

विशेष स्पष्टीकरण.

कर्मराशि के दो प्रकार हैं:–(१) बादर कर्म राशि, (२) सूक्ष्म कर्म राशि। बादर कर्म राशि के ऊपर तो उपशम समक्ति से जय प्राप्त की जा सकतीहै कि जिस स्थिति को 'नियट्टिबादर' गुणस्थान सम्बोधन है। परन्तु सूक्ष्म कर्म राशि के ऊपर जय प्राप्त करने के लिए कषाय समकितरूप खड्ग अवश्य होना चाहिए।

कुछ जीव आठवें गुणस्थानक की धर्मकी लड़ाई में शस्त्र की कच्ची सजावट के परिणाम से एक कदम भी आगे नहीं चल सकते, और कर्मजीव की सभी मेहनत निष्फल बना कर, फिर से सातवें या छठे गुणस्थान में नीचे उतार देते हैं, और कोई सतेज समकितरूप हथियार से नवें–दसवें गुणस्थान पर पहुंचता है। अब यदि सूक्ष्म का किला भिन्न न हो तो कर्म उसे वापिस हठाकर नीचे के गुणस्थान के ऊपर रख देते हैं। परन्तु राग के ऊपर जय प्राप्त करने की पूरी शक्ति धारण करा जाता है, पर अन्तर में से विषयकषाय को सूक्ष्म रूपसे रही हुई आग बूझ नहीं गई होती, अतः मोक्ष प्राप्त हो, ऐसा बारहवाँ गुणस्थान पकड़ नहीं सकते; परन्तु ग्यारहवाँ वीतरागगुणस्थान ज़रूर पकड़ सकते हैं, कि जहां से मोक्षका मार्ग मिल नहीं सकता। अब यदि शुभ कर्मों के उदय में आयु पूर्ण हो जाय, तो अनुत्तर देवगति प्राप्त हो जाती है, और तीसरे भव में मोक्ष हो, ऐसा शीलरुप वसियतनामा प्राप्त कर लेता है। ग्यारहवां गुणस्थान प्राप्त करने में उपशम श्रेणी

जब इस मिशन ने खीचन में विनोदमुनि के साथ बात-चीत की तब वह बात सभी मुनियों और संघ के समक्ष ही हुई थी। विनोदकुमारने तब अपने मुखसे, अपने द्वारा किये गये गुप्त विहार और उसकी रचना के सम्बन्ध में भी कहा था। वह सब बाद के प्रकरण में कहा जा रहा है।



मनहर

टूट पड़े शीघ्र बड़े मण्डप मनोरथ के,
जा ते विनोदचन्द्र त्रास हिय को तपाता है ॥१॥
आनन्द का बाग आज ऊजड़ बना है अहा!
थाल पर बैठे पर भोजन न भाता है ॥२॥
आनन्दलता के साथ सूख गये सुख पेड़,
विनोद विरह अंग, आग उपजाता है ॥३॥
बीराणी कुटुम्ब आज हीन-दीन बन गया!
हृदय में शूल सम 'पनजी' बताता है ॥४॥

लेखक— पनजी जेसलभाई फेचड़िया,
दूधरेजवाला

प्रकरण १७

च्यवन, उत्पत्तिरहस्य और विनोदमुनि का निवेदन।

ता. २४-५-'५७ के रोज़ श्री विनोदकुमार, रातको आठ बजे घर से निकले। सीधे ही राजकोट जंकशन स्टेशन पर जाकर उन्होंने जोधपुर का टिकट लिया। ता. २५-५-'५७ की सुबह में-सात बजे-वे महेसाणा पहुँचे। वहाँ ढाई घण्टे तक गाड़ी खड़ी रहती है। बीच के समय में वे गाँव में गये और मुंडन करवा लिया। 'लुंचन' के लिये कुछ भाग में बाल रखे थे। पात्रादि उपकरणों के लिए भी उन्हों ने वहाँ पूछा था; पर कुछ पूछताछ ज्यादा होने से बात को वहीं रहने दिया। कोई अगर परिचित मिल गया, तो संकल्प की पूर्ति में विघ्न आने की महती संभावना थी। महेसाणा से वे रवाना हुए। मारवाड जंकशन और जोधपुर जंकशन होकर, ता. २६-५-'५७ के रोज़ पौ फटते ही फलोदी आ पहुँचे। सुबह के साढ़े चार बजे वहाँ गाड़ी पहुँचती है। स्टेशन पर उतरने के बाद, खीचन जाने के रास्ते के सम्बन्ध में उन्होने स्टेशन मास्टर से पूछा। स्टेशन मास्टर ने कहा कि, अभी तो अन्धेरा है थोड़ी देर तक वेईटिंग रूम में आराम कीजिए, और थोड़ी देर के बाद जाने का सोचिए। स्टेशन मास्टर की इस बात की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया, और अपनी भावना के अनुसार खीचन का रास्ता पकडा। इस सुकोमल पुरुषने पैदल चलकर, अपनी छोटी बेग लेकर किसी भी प्रकार के जोखिम के विचार के सिवा खीचन की ओर प्रयाण शुरू किया। हालाँकि स्टेशन के ऊपर बैलगाड़ी थी, उपयोग भी उसका किया जा सकता था किन्तु इस महापुरुषने बैलगाड़ी का उपयोग

नहीं किया, और पैदल ही चलने लगे। खीचन पहुँचे और उपाश्रय में विराजित मुनिवरों के दर्शन किये। वन्दना-नमस्कारादि कर, यथाविधि सुखशाता पूछकर बाहर आये। और सामायिक के कपड़े पहने और पूज्य सन्तों के सन्मुख, सामायिक का विधि शुरू किया। सामायिक में 'करेमि भन्ते' का पाठ पढ़ते समय श्रावक की सामयिकता में जहाँ 'घटिकाद्वय' का विधान आता है, उसके बदले में उन्होंने 'यावज्जीवन' (जावजीव) का उच्चार कर दिया। जैसे :- जाव नियम पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं। (अर्थात्-दो घड़ियों के लिए षट्काय जीवहिंसा से मैं निवृत्त होता हूँ।) इस के बदले मे उन्होंने कहा :- जावजीव पज्जुवासामि, तिविहं तिविहेणं। (अर्थात्-तीन करणों और तीन योगों से यावत् जीवन मैं साधुता का ग्रहण करता हूँ।) यह उनका उच्चारण मुनि श्री लालचन्दजी के सुनने में आया (वे उस समय पीछे के भाग में परदे की ओट में मवाही पदार्थ ले रहे थे।) उन्होंने पूछा-"विनोदकुमार! तुम यह क्या कर रहे हो?" प्रत्युत्तर मिला-"अप्पाणं वोसिरामि।" (अर्थात् यावज्जीवन संसार का त्याग करता हूँ) इस प्रकार कह कर उन्होंने अपना पाठ समाप्त किया। बाद में विनयपूर्वक दो हाथ जोड़कर वे कहने लगे कि, महाराज, वह तो हो चुका! मैंने स्वयमेव दीक्षा ले ली। बस, वह ठीक ही हुआ है। अब उस में किसी भी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है, और वह हो भी नहीं सकता। अब इस के सिवा अगर आपकी कोई आज्ञा हो, तो आदेश दीजिए।

इस प्रकार की स्वयंदीक्षा अंगीकृत करने के बाद उसी दिन दुपहर को मुनि श्री समर्थमलजी महाराजजीने विनोदकुमार मुनि को अपने पास बुलाया, और समझाया कि, तुम एक खानदान कुटुम्ब के व्यक्ति हो। तुम्हारी दीक्षांगीकार की रीति ठीक नहीं है; क्यों कि तुम्हारे माँ-बाप को इस

घटना के ज्ञान से बड़ा दुःख होगा। मेरी सम्मति है कि रजोहरण के दण्ड में से कपड़ा तुम निकाल लो, जिससे तुम श्रावकों की पंक्ति में आ जाओ। और आवश्यकता पड़ने पर तुम श्रावकों का साथ ले सकते हो। इस प्रकार तीन बार पू. महाराजजीने उन्हें समझाया था पर उन्होंने तीनों वार यही उत्तर दिया था कि, "जो हो गया वह हो गया, अब मुझे आगे क्या करना चाहिए, वह कहिए।"

इस स्थान पर लेखक श्री विनोदमुनि को करोड़ वन्दन करता है और प्रार्थना करता हुआ उन्हें सम्बोधन करके कहता है कि, हे परमपुरुष! अच्छा ही हुआ, आपकी माताजीने आप को जन्म दिया।

जो वीरपुरुष संसार को श्लेष्म की तरह छोड़कर वापिस स्वीकृत नहीं करते, वे ही सच्चे धर्मवीर कहलाते हैं।

जिस प्रकार युद्ध में कर्मशूर पुरुष पीठ नहीं दिखाते, उसी प्रकार धर्मशूर भी माताकी गोद को लज्जास्पद नहीं करते। वे कर्म का पराजय करके मोक्षकी प्राप्ति अवश्य ही कर लेते हैं। कोई माता ही ऐसे पुरुष को जन्म देनेवाली होती है। ऐसे पुरुषों को आगम के सम्यग्दर्शन न्याय से 'समुच्चय केवली' कहा गया है। प्रमाण में बड़ी द्विपष्टि में देख सकते हैं। उस में चौथे से लेकर चौदहवें गुणस्थानवाले सभी जीवों को 'समुच्चय केवली' में स्थान दिया गया है।

श्री समर्थमलजी जैसे महामुनि के प्रश्न के सम्बन्ध में, श्री विनोदकुमारने दिये हुए उत्तर को सुनकर खीचन का चतुर्विध संघ विचार में पड़ गया। मुनियों के ऊपर संसारियों का अकारण हमला न हो, इस लिए उन मुनियोंने विनोदकुमार से एक ज़ाहिर निवेदन करने के लिए अनुरोध किया। उस में साधुओं की सलामती का प्रश्न था।

श्री चतुर्विध संघ की इस आज्ञा को मानकर, दीक्षा के दूसरे दिन, अपने हस्ताक्षरों से, एक निवेदन उन्होंने संघ के

समक्ष पेश किया। भावसंक्षेप उसका यह है कि, मेरे मातापिता मोहाभिभूत होकर मुझे दीक्षा की आज्ञा नहीं दे सकते थे; और मेरी अन्तर्ध्वनि मुझे, 'असंखयं जीविय मा पमायए'- एक क्षणभर भी दीक्षारहित न रहने के लिए पुकार कर रही थी। विनोदमुनि के उस निवेदन को यथास्थिति यहाँ पर लिखा जा रहा है।

मुनिश्री विनोदकुमार ने स्वयमेव दीक्षा लेने के बाद खीचन (राजस्थान) के श्री चतुर्विध संघ के समक्ष किया हुआ

"निवेदन"

पूज्य मुनिराजगण, भगवती महासतियो, सुज्ञ और सम्यग्दृष्टि श्रावकगण एवं, श्राविकाओ !

गत कल, सुबह में यहाँ लालचन्दजी महाराज, कानमलजी महाराज आदिने मुझे अपनी दीक्षा के लिए ज़रा और सोच-विचार करने के लिए कहा; फिर भी मुझे लगा कि भागवती प्रव्रज्या के लिए क्षणपरिमित समय का प्रमाद करना भी उचित नहीं है। अतएव मैंने श्री अरिहन्त भगवन्तों और श्री सिद्ध भगवन्त की साक्षी से एवं अपने गुरु महाराज के समक्ष यावज्जीवन (जावजीव), तीन योगों और तीन करणों से पाठ पढ़कर अपनी आत्मा के कल्याण के लिए भागवती प्रव्रज्या का अंगीकार किया है।

मेरी अपनी भावना तो खीचन गाँव के बाहर से ही दीक्षा लेकर यहाँ आने की थी; परन्तु विचार हुआ कि पू. समर्थमलजी महाराज तो मुझ से अपरिचित हैं। अतः कुछ बाधा आ पडे तो? -इस विचार से मैं यहां श्रावक के नाते आया था। पर जब मेरे परमोपकारी गुरुवर्य श्री लालचन्द्रजी महाराज के दर्शन किए कि मेरी भावना स्थिर हुई; और व्रज्या अंगीकृत की है। पू. श्री समर्थमलजी महा-राजजीने मेरे हित के लिए मुझसे कहा कि, मुझे अपनी

प्रशंसा के लिए नहीं, किन्तु लोगों की कहीं झूठा ख्याल न आए कि मेरी प्रव्रज्या क्षणिक भावनाओं से प्रेरित है, या ज्ञानराहित्य से हुई है। और भी लोगों में जैनशासन की प्रभावना हो, इस हेतु से मुझे अपना जीवन वृत्तान्त प्रकट करना चाहिए। इस आज्ञा को मान कर मैं अपने लिए संक्षेप में कुछ कहूँगा।

संसारपक्ष की वात करता हूँ। शामजी वेलजी वीराणी मेरे दादा होते है। मेरे पिताजी का नाम दुर्लभजी है, और माताजी का नाम मणिवहन है। हम पाँच भाई हैं। सभी के नाम क्रमशः (१) केशवलाल, (२) हसमुखराय, (३) शान्तिलाल, (४) विनोदचन्द्र (यानी मैं) और (५) रमेशकुमार।

मेरी बड़ी वहन का नाम मंजुला, और छोटी वहन का नाम सुशीला है। मेरे पिताजी आदि, करीव छः वर्ष के पहले, राजकोट से वोटाद, नवीनचन्द्रजी महाराज के दर्शन के लिए गए थे, तभी मुझे महाराज के पास रहकर 'महाराज' वन जाने की इच्छा थी; परन्तु मुझे अनुमति न मिली। हालाँकि मेरी माताजीने तो तव भी मुझे अनुमोदन दिया था। उस के पहले और वाद में भी गोण्डल सम्प्रदाय के गादी-धारक पू. आचार्य श्री पुरुषोत्तमजी महाराज और अमीचन्द्रजी महाराज का निकट का सम्पर्क मुझको रहा। अतः धार्मिक संस्कार तो वने ही रहे। सांसारिक सामान्य अभ्यास कर के, मैं अपने भाई से मिलने के लिए लन्दन गया था। १९५३ का वह वर्ष था। वहाँ भी मेरे पिताजी का पत्र था कि मैं ज्यादा अभ्यास वहीं रहकर करूँ; परन्तु मेरी इच्छा जैनधर्म का अभ्यास करने की थी। वह तो वहां नहीं वन सकता था। सुदान की पीढ़ि में भी घर के आदमी की जरूरत थी। अतः मैंने पोर्टसुदान की हमारी पीढ़ि में एक-दो वर्ष तक काम किया था। उसके दरम्यान एक दिन, सामायिक वांधकर मैं वैठा

था, वहां उत्तराध्ययनजी सूत्र का १९ वॉ अध्ययन पढ़ने में आया। मुझे लगा कि मनुष्यजीवन को परमफलान्वित करनेवाली केवल एक दीक्षा ही है।

अमोलखऋषिजी महाराज का जैन तत्त्व प्रकाश भी पढ़ने में आया था, और मुझे लगा कि, सांसारिक ज्ञान की बदौलत आध्यात्मिक ज्ञान—बत्तीस आगमों का ज्ञान—अनन्तगुणता से अच्छा है। मुझे दिल में हुआ कि अब कुछ अनुकूल संयोग मिल जाएँ तो मुझे सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और साधुसाध्वियों की सम्यग्दृष्टि का परिचय करना चाहिए। अतः मैंने विचारानुसार किया। बहुत साधुओं और आर्याओं के सत्संग में, मैं आने लगा।

उसमें एक समय चीचपोकली के उपाश्रय में सहज ही लालचन्द्रजी महाराज के दर्शन हुए। दर्शन होते ही मुझे बहुत आनन्द हुआ फिर तो मैं लगभग हररोज़ लालचन्दजी महाराज, मानमलजी महाराज, कानमलजी महाराज और पार्श्वमलजी महाराज के पास दर्शन करने के लिये जाया करता था। उन सब की कृपा दृष्टि से कुछ कुछ ज्ञान प्राप्त करता रहता था। बाद में गत चातुर्मास के पहले मुझे दीक्षा की भावना हुई थी। अतः मैंने अपने पिताजी से आज्ञा मॉगी थी; पर उन्होंने उस बात की ओर ध्यान नहीं दिया था। इस बात को एक वर्ष बीत गया। फिर से मैंने अपने पिताजी से आज्ञा मांगी; और इस समय भी प्रथम की तरह ही बात को उन्होंने उड़ा दिया। अनन्त उपकारी मेरे पिताजी के समक्ष मैं कड़ी भाषा में बात करने की क्षमता नहीं रखता था। और दूसरी तरफ मुझे लगा कि आयु अशाश्वत है, और ऐसे उत्तम कार्य के लिए मुझे ज़रा भी प्रमाद करना उचित नहीं है। अतः सोच समझ कर ही मैंने यह कार्य किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्री वीरप्रभु महावीर स्वामी का सकल संघ मेरे इस कार्य को अनुमोदन देगा ही। तथास्तु।

प्रकरण १८

श्री विनोदमुनि का गोपाल स्वरूप से बलिदान

(श्री विनोदमुनि कालधर्म को प्राप्त हुए–स्वर्गगमन की ओर) "असंखयं जीविय मा पमायए"–नामक मंत्र का साधक उत्पन्न होकर अस्त हो जाता है।

मातापिता को अपनी अज्ञानता का भान होता है–कर्म की विचित्र घटना–खीचन के चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष महान शोकापात।

अद्‌भुत–रहस्यमय घटना

इस संसार का स्वरूप बड़ा विचित्र है। श्री विनोदमुनि के मातापिता को अपने भेजे हुए मिशन की ओर से खबर मिली कि श्री विनोदकुमार की स्वयंदीक्षा, परिपक्व निश्चय के परिणाम से हुई है। अतः मनुष्य तो क्या, किसी देवकी भी शक्ति नहीं है कि उनके निश्चय को परिवर्तित कर सके। इस करुणारसमय उत्तर से मातापिता को असह्य दुःख हुआ। थोड़े समय में चि. शान्तिलालभाई के लग्न का प्रसंग था। इस प्रसंग का लाभ लेकर पिताजीने विनोदकुमार के वियोग के दुःख को भूलने का प्रयत्न किया, और वाणी से श्री विनोदकुमार की माताजी को भी दुःख भुला देने के अनेक प्रयत्न शुरू किये। लग्न के निमित्त से गृह–शोभा आदि कार्य किये गये, और अनेक चीज़ें लाकर मकान को सुन्दर बनाया गया। लग्न प्रसंग अतिआनन्द और उत्साह से मनाया गया। उसके परिणाम से श्री विनोदकुमार के वियोग का दुःख विस्मृत

हो जाय। परन्तु शुभ फलों के आस्वादन करनेवालों को यह मालूम नहीं होता कि, इस संसार के शुभप्रसंग क्षणिक ही हैं, और अशुभ कर्मों का प्रबल उदय एक क्षण में लात लगाकर सुख को हडप लेता है। इस आगम सिद्धान्त के न्याय के अनुसार श्री विनोदकुमार के मातापिता को भयंकर पश्चाताप करने का समय कर्मगति ने दे दिया। वे न तो दीक्षामहोत्सव मना सके, या न तो इस परम पवित्र पुरुष के दर्शन करने का अवसर भी पा सके।

घटनावली

श्री विनोदकुमारने तो जसराजभाई के साथ दीक्षा लेनेका निर्णय किया था, पर कर्मों ने दोनों को अलग कर दिया।

श्री विनोदमुनिकी दीक्षा वैशाख कृष्ण द्वादशी, रविवार, ता. २६-५-'५७ के रोज खीचन में हुई, और मुनि श्री जसराजभाई की दीक्षा ज्येष्ठ शुक्ल पञ्चमी, सोमवार, ता. ३-६-'५७ के शुभ दिन पर मांगरोल में हुई। किये हुए निश्चय के अनुसार तो दोनों की दीक्षा हो चुकी; परन्तु अन्तराय कर्मों से आचार्य श्री १००८ पुरुषोत्तमजी महाराज के शिष्यों के नाते दोनों मिलकर नहीं रह पाये।

श्री विनोदकुमार को खीचन की ओर आकृष्ट करनेवाला, श्री लालचन्दजी महाराज का सम्बन्ध था। वह सम्बन्ध बम्बई में निष्पन्न हुआ था। इस सम्बन्ध के अनुसार जहाँ जहाँ श्री लालचन्दजी महाराज विराजित हों, वहाँ के श्री संघ के साथ पत्रव्यवहार कर, पत्र द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का श्री विनोदकुमार सदैव प्रयत्न करते थे। एक समय बाल ब्रह्मचारी महासतीजी जो श्री संसार पक्ष से श्री लालचन्दजी महाराज की पुत्री लगती थीं, उन्होंने किसी के द्वारा श्री विनोदकुमार को खबर भेजी

पू. श्री लालचन्दजी महाराज आदि ठाणा ४, खीचन

जानेवाले है, और खीचन में पू. शास्त्रविशारद श्री समर्थमलजी महाराज विराजित हैं। उनके पास उनकी अभ्यास करने की भावना है।

यह घटना आकर्षक बनी थी, औरश्री विनोदकुमार की स्वयं-दीक्षा भी हो चुकी।

थोड़े समय में फलोदी के श्री संघने पू. श्री लालचन्दजी महाराज से फलोदी में चातुर्मास करने का अनुरोध किया, किन्तु ज्ञानाभ्यास की तमन्ना में, पहले तो मुनिश्रीने फलोदी के श्री संघ की विज्ञप्ति का अस्वीकार किया। इस समय फलोदी में किसी का भी चातुर्मास नहीं था। मुनिजीने श्री संघ की विनय का अस्वीकार किया, अतः श्री संघ बहुत गमगीन बना। करुणारसस्वामी मुनिजी श्री लालचन्दजीने इस वातावरण को देखकर अपना निर्णय बदला, और चातुर्मास फलोदी में करने का निर्णय कर, अषाढ शुक्ल त्रयोदशी को विहार किया, और फलोदी आए।

फलोदी में हरकोई श्रावक श्राविकादि व्यक्ति इन मुनि श्री विनोदकुमार के दर्शन कर बहुत आनन्दित होता था। और अपनी भाषा में पूछता था कि, "कैसा है? मुनिजी!" इस प्रकार पूछने का भाव यह था कि विहार में आपको चलने का परिषह सहन करना पड़ा है उस का असर हुआ कि नहीं। क्यों कि श्री विनोदमुनि का सुकोमल शरीर देखनेवाले को चकित कर देता था।

श्री विनोदमुनि का जवाब उनकी मातृभाषा में मिलता था वह इस प्रकार था-'बहुज आनन्द छे, बहुज आनन्द छे।' यह भाषा, सुननेवाले को बहुत प्रिय लगती थी। गुरुजीने भी विहार के बाद पूछा कि क्यों विनोदमुनि, पैर दुःखते

हैं क्या? उत्तर में श्री विनोदमुनिने बताया कि 'महाराज! पैर तो दुखते हैं, पर आनन्द बहुत है।

कर्म की किसी विचित्र घटना की वजह से इन मुनियों का फलोदी में आगमन हुआ है। वह भाव तो केवली भगवान के अतिरिक्त और कोई नहीं जान सकता। इतना जरूर है कि मतिश्रुत ज्ञान के फल में इन भावों के स्वरूप को असंखयं जीविय मा पम्मायए मन्त्र साधना में घटना को स्वरूपसे नहीं, पर कालधर्मस्वरूप से अवश्य श्री विनोदमुनिने आत्मा में अनुभूत किया होगा। अर्थात् अपने मरण काल के उन्हों ने अवश्य दर्शन किये होंगे। और वही उनकी सिद्ध दीक्षा का कारण था यह बात घटना का वह स्वरूप निश्चित कर देता है, और उसके निवेदन में भी इस संज्ञा की आवाज़ है।

जिस प्रकार श्री गजसुकुमाल को अन्तगड केवली होने के लिए अपने राक्षसरूप श्वशुर सोमिल का निमित्त था। उसने श्मसानभूमि में ध्यानस्थ गजसुकुमाल के सर पर आर्द्र मिट्टी की मर्यादा कर, भयंकर आग लगा दी। परिणाम यह हुआ कि यकायक उत्कृष्ट परिषह को सहन कर श्री नेमिनाथ भगवान की छत्र छाया में इन महाप्रभु के समक्ष निर्वाण प्राप्त किया अर्थात् सिद्धि को वरण किया। उसकी साक्षी में आगे प्रसिद्ध है, उस प्रकार कर्म की गति न्यारी है—उस प्रकार विनोदमुनि के कालधर्म का कर्मोंने सर्जन किया। वह दृष्टान्त कदाचित् आगामी चौवीसी के प्रथम तीर्थंकर देव के समय में कहा जायगा और अनेक जीव, उस आगमन्याय से सिद्धि को प्राप्त करेंगे। इस प्रकार का सूचन घटना के स्वरूप में संनिविष्ट हुआ मालूम पडता है।

इस वर्तमान काल में काल के प्रभावसे महाकर्मी आत्माओं को ऐसी घटनाओं के रहस्य की लेश भी गन्ध प्राप्त नहीं हो सकती।

कालधर्म का आकर्षण।

दीक्षा के बाद के ठीक ढाई मास के बाद घटना ऐसी घटी कि, श्री विनोदमुनि को टट्टी जाने की संज्ञा हुई। शास्त्र की परिभाषा में उसे 'स्थंडिलगमन', 'ठले जाना', 'पासवण निमित्तक गमन', आदि कहते हैं। इस क्रिया में साधु को जंगल में जाना चाहिए। उसकी क्रिया के लिए जानेकी उन्होंने तैयारी की।

जिनकी आज्ञा में वे प्रवृत्त थे, उन श्री तपस्विराजजीने कहा कि, बहुत गर्मी है, ज़रा ठहर जाइए। आज्ञा सर पर चढ़ाकर, उस के बीच के समय में समिति गुप्ति न्यायसे वस्त्र रजोहरण आदि की प्रतिलेखना कर ली। इतने में असह्य दबाव आया। फिर से आज्ञा माँगी। उन्होंने कहा कि 'मुझे हाज़त विशेष है; अतएव मैं जाता हूँ, जल्दी ही लौट आऊँगा'। काल की गहन गति को दुःखद रचना करनी थी। आज ही हाज़त के लिए अकेले जाने का प्रसंग था। रोज़ तो सभी साधु साथ मिलकर जाते थे।

हाज़त से मुक्त होकर वापिस आ रहे थे, इतने में रेल्वे लाईन के ऊपर दो गायें आ रही थीं। दूसरी ओर से गाड़ी भी आ रही थी। उसकी व्हीसल बजने पर भी गायें दूर नहीं जा रही थीं। विनोदमुनिने देखा कि अगर ये गायें नहीं हटेंगी, तो कुचली जाएँगी। मुनिका हृदय कम्पित हो उठा। महती अनुकम्पाने मुनि के हृदय में स्थान लिया। हाथ में रजोहरण लेकर जान की परवाह किये विना गायों को बचाने के लिए दौड़े। गायों को तो उन्होंने बचा ही लिया, परन्तु इस क्रिया में षट्कायरूप जीवों की दया के साधन रूप रजोहरण, कि जो विनोदमुनि को आत्मा से ज्यादा प्यारा था, वह गाड़ी की लाईन के ऊपर गिर गया, और षट्काय जीवों के रक्षक श्री विनोदमुनि उसे प्राप्त करने के लिये दौड़े। जड़वाद को सिद्ध करते हुए एँजिन के बीच में वे

दौड़ते दौड़ते आ गये। अपना बलिदान उन्होंने दे दिया। और गोपालस्वरूप से स्वर्ग की ओर प्रयाण किया। उस के प्रमाण में उन की मृतदेह को देखनेवालों के शब्द नीचे दिये जा रहे हैं।

धराशायी हो गये। शरीर से रक्त का प्रवाह फूट पड़ा, और कुछ देर बाद प्राणान्त हो गया। फलोदी व खीचन में यह खबर फैलते ही हाहाकार मच गया। सभी लोग कहते थे कि, गौरक्षण में मुनि श्री ने अपने प्राण झोंक दिये। उन के चेहरे पर शान्ति विराजमान हो रही थी। चेहरे को देखने पर यही लगता था कि उन्होंने समता भाव धारण कर शान्ति से देह छोड़ी। इसी से चेहरे पर किसी प्रकार की विकृति नहीं आयी।

इस दुर्घटना की खबर, राजकोट में निवास करते हुए श्री विनोदमुनि के संसार पक्षीय पिताजी दुर्लभजी भाई को फलोदी श्री संघने टेलीफोन से भेजी। उस समय पिताजी बाहर गये थे, और माताजी मणिबहन सामायिक-प्रतिक्रमण में बैठी थीं। केवल एक नौकर घर में था। उसने टेलीफोन उठाया, पर वह नौकर टेलीफोन में कुछ समझ नहीं पाया। परन्तु बताया कि टेलीफोन आया था, और "श्री विनोदमुनि फलोदी पधार गए, और शान्ति में विराजमान हैं।" ऐसा उस में कहा गया था। दुर्लभजी भाई को तो आश्चर्य हुआ कि फिर से समाचार क्यों आये।

सुबह के सात बजे फलोदी श्री संघ का तार, श्री दुर्लभजी भाई के हाथों मे आया। उस में भी ऐसा घोटाला हुआ कि 'ट्रेइन एक्सीडेन्ट' के बदले 'रेइन एक्सीडेन्ट' लिखा गया था। गाड़ी के बदले बरसात उस का अर्थ होता था। इन शब्दों से दुर्लभजी भाई की आत्मा शंकित हो गई। खराब

समाचार हैं, यह तो उन्हें मालूम हो ही गया; परन्तु विशेष निश्चित करने के लिए बम्बई के द्वारा फलोदी से समाचार मँगवाए कि जो समाचार स्पष्ट थे। इस से सारा वीराणी कुटुम्ब इस समाचार को सुनकर दुःख में निमग्न हो गया।

समाचार बीजली की तरह राजकोट के सभी स्थलों में पहुँच गये और राजकोट के श्री संघमें और दूसरी जगहों के स्थानक-वासी संघों मे शोक की भावना फैल गई।

श्री दुर्लभजी भाईने स्पेशियल प्लेईन में फलोदी पहुँचने की व्यवस्था की। शव के लिए अन्तिम वस्त्र, और अग्नि संस्कार के लिए चन्दन काष्ट आदि साथ में ही लेनेका प्रबन्ध किया और फलोदी श्री संघ को टेलीफोन के द्वारा सूचना भेजी गई कि 'मैं स्पेशियल प्लेईन से वहाँ आता हूँ, और अग्नि संस्कार को रोका जाय।' परन्तु टेलीफोन और तार के घोटाले से, श्री संघ को अग्नि-संस्कार कर डालना पडा। सूचना का टेलीफोन आधे घण्टे की देरी से पहूँचा। यदि सूचना आधे घण्टे पहले से पहुँची होती, तो मातापिता को पुत्र के दर्शन शवरूप से हो जाते, किन्तु भाग्य की कमी से अन्तराय कर्मोंने तार, टेलीफोन आदि की अव्यवस्था करा दी। वह प्रसंग जिन्दगी के लांछन के रूप में बन गया।

अतः प्लेइन का प्रोग्राम वापिस कर दिया गया, और (मातापिता) श्री दुर्लभजी भाई और मणिबहन, ता. १४-८-'५७ के रोज़ ट्रेईन द्वारा फलोदी पहुंचे। इस समय दर्द भरी स्थिति से, श्री संघ के मुखी तुल्य पच्चीस गृहस्थों ने ट्रेईन के ऊपर जाकर स्टेशन पर इन दुःखी मातापिता को धीरज बँधाया। तब सुबह पौने चार बजे का समय था।

इस प्रसंग पर मातापिता को इस दुःखद घटना का तीव्र स्मरण आ गया, और बोलने के प्रारंभ के साथ ही गला

भर आया, और हृदय विह्वल हो उठा। आँखों में आँसुओं की धारा बहने लगी। ऊन की माताजी तो अति विह्वल होकर रुदन करने लगीं। यह दृश्य अत्यन्त ही करुणाजनक था। फलोदी का श्री संघ भी इस घटना से बहुत दुःखी था। परन्तु समयानुसार मन पर काबू रख कर यथा शक्य धर्मश्रद्धा के शब्दों से इन दुःखी मातापिता के चित्त को सान्त्वना दी। उस के बाद श्री संघ के साथ श्री दुर्लभजी भाई और मणिबहनने पू. तपस्वीजी श्री लालचन्दजी महाराज के दर्शन किये। इस प्रसंग पर भी श्री विनोदमुनि की हमेश के लिए प्राप्त अनुपस्थिति ने मातापिता के हृदय को अत्यन्त विह्वल बना दिया। आँखों में से उनकी सावन भादो बरसने लगे। माता-पिता की इस स्थिति को देखकर स्वयं तपस्वीजी श्री लालचन्दजी महाराज का हृदय भी भर आया। (जिन्हें अपनी प्रिय धर्मपत्नी के देहावसान के समय आँसू नहीं आये थे।) ऐसे महापुरुष को भी इस प्रसंग पर शोक की छाया में आकर आँखों में से टप टप आँसू गिरने लगे। इकठे हुए समस्त संघ मे भी शोक छाया गहरी बन गई। पाँच मिनट तो शून्यवत् स्थिति रही। किसीने एक शब्द भी न कहा-न बोला जा सका। इस प्रसंग पर श्री लालचन्दजी महाराजने अवसर को पहचान कर और धैर्य को यकायक एकत्रित कर के श्री विनोदमुनि के मातापिता की सान्त्वना के लिए उपदेश शुरू किया। संक्षेप में इस का सार नीचे दिया जाता है।

अब तो वह रत्न चला गया। समाज का आशादीप अस्त हो गया। एकदम उदित होकर अस्त हो गया। अब वह दीपक फिर से आ सकनेवाला नहीं है। श्री विनोदमुनि की संसार पक्ष की माताजी मणिबहन से मुनिजी ने कहा कि, बहन! भावि प्रबल है। इस विषय में महापुरुषोंने

भी हाथ-धो डाले हैं, और सभी को मरणशरण होना ही पड़ता है। तब फिर अपने जैसे पामर प्राणी की क्या ताक़त है? अब तो शोक दूर कर, हमें चाहिए कि हम उनके मृत्यु के आदर्श को देखकर धीरज का अवलम्बन करें।

इन वचनों से मातापिता का हृदय शान्त हुआ। और बताया कि, "कर्मों की गति बड़ी विचित्र है। फलोदी श्री संघने तो अपना कर्तव्य बजाया, परन्तु हमारे भाग्य में अपने इस रत्नरूप पुत्र के शव के भी महर्षिरूपसे दर्शन करने का नहीं लिखा होगा। अन्तराय कर्मोंने हमारे लिए ऐसी रचना की कि तार टेलीफोन में भी अव्यवस्था उत्पन्न हो गई।" उपर्युक्त घटना के अनुसार संघ के साथ चर्चा वहाँ हुई।

इस बात को कहते कहते भी पिताजी का हृदय बार बार भर आता था; और बात के अन्ततक आँखों में से अश्रुधारा बहती रही। उस समय भी समस्त चतुर्विध श्री संघ भी शोक में निमग्न हो गया, और तपस्वीजी श्री लालचन्दजी महाराजने स्वस्थ होकर, श्री दुर्लभजी भाई से कहा कि, "भाई! यह आपके ही दुर्भाग्य के अन्तराय का उदय नहीं है; किन्तु हमारे भी महान अन्तराय और दुर्भाग्य का भी उदय है। वे स्वयं आप के घरकी ही नहीं, पर वे विनोदमुनि हमारे घरकी भी सम्पत्ति थी; परन्तु वे स्थिर नहीं रह पाये! दीक्षा के रूप में उनको शायद ढाई मास हुए होंगे। यों तो सदैव एक मुनि उनके साथ ही रहा करते थे। केवल दो बार ही उन को अकेले जाना पड़ा था, और इस समय तीसरी बार वे अकेले गए थे।

लगभग चार बजे उन को शारीरिक हाजत पर जाना पड़ा और बाहर जाने के लिए आज्ञा माँगी। इस राजस्थान प्रदेश में भयानक गर्मी पडती है, अतः हमने कहा कि थोड़ी देर

तक ठहर जाइए; क्यों कि गर्मी की सख्ती के कारण से धूल बहुत तप्त हो गई होगी। वे रुक गये, और पास में बैठकर अपने वस्त्र और रजोहरण आदि का पडिलेहण किया। वहांतक पांच बज चुके थे। उस के बाद मुनिजीने कान्ह, महाराजजी से पूछा कि, 'मेरे साथ चलेंगे?' कान्ह मुनिने उत्तर दिया कि, 'अभी आहारपानी आ जायगा। आहार करके साथ चलूंगा।' तब विनोद मुनिने कहा कि, 'मुझे अब हाजत के लिए जानेकी बहुत ज़रूरत है, आप आहारपानी कर लें, तब तक मैं जाकर तुरन्त ही वापिस लौटूँगा।' उसी दिन मानमुनि को दशवाँ उपवास था। पारसमुनि भी उस समय इन्फ्ल्युएन्जा की बीमारी में से अभी अभी ही कुछ अच्छे हुए थे; अतः कोई भी उनके साथ न जा सका। वे जंगल गए, और पौने घण्टे में एक ओसवाल भाई हमारे पास दौड़ते दौड़ते और हांफते हांफते आए, और दुर्घटना के समाचार दिये। हमने साधारण चोट की ही कल्पना की थी। श्री कान्हमुनिजी आहार के लिए बैठे, और एक कवल मुंह में गया ही था कि ऐसे समाचार मिले। हम एकदम ही जैसे थे वैसे ही घटना स्थल पर, बात जानने के लिए पहुँच गए। हमने आधा रस्ता पसार किया था कि, मुनिजी के स्वर्गप्रयाण (कालधर्म) करने के समाचार मिले। एकदम हृदय के ऊपर वज्रघात जैसा हो गया।

दूसरी ओर मानमुनिजी उपाश्रय में थे। उन को खबर मिली कि मुनिजी के पैरों में गंभीर चोट लगी है, और एक पैर तो टूट गया हुआ मालूम होता है। उस समय मानमुनि ने प्रतिज्ञा की, अहो शासनदेव! जहाँ तक मैं जीवित रहूँगा, वहाँतक अपने पिता और बन्धुओं को छोड़कर आए हुए इन महाभाग्यशाली त्यागी वैरागी मुनिजी की सेवा करता रहूँगा,

और मेरी संयमयात्रा को पूर्ण करूँगा। आख़िर में उन्हें भी समाचार मिले कि, हमारा आशादीपक बूझ गया है। हमारी संपत्ति लूटी गई, हमारा रत्न खो गया! परन्तु भावि प्रबल है। हमारे अपने लिए दुगुने दुर्भाग्य के अन्तराय का उदय है।"

इस प्रकार कहते कहते तपस्वीजी महाराजजी का कंठ भर आया, और आँखों में से अश्रुधारा वहने लगी।

उस के बाद विनोदमुनि के मातापिता से तपस्वी मुनिजी ने उन्हें आश्वासन हो, ऐसा उपदेश दिया। वह वैराग्य से भरपूर उपदेश था। मांगलिक सुनाने में आया, और उस के बाद एक विराट सभा के समक्ष पाट के ऊपर विराजमान होकर कान्हमुनिने व्याख्यान किया।



दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए॥

भावार्थ:– जैसे रात्रि और दिवसों के अतिक्रम होने पर वृक्ष का पत्र पीला होकर गिर पड़ता है इसी प्रकार को मनुष्यों का जीवन भी है। इसलिए हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

प्रकरण १९

बनी हुई परिस्थिति के विचार के साथ श्री कान्ह मुनिजी महाराजजी का व्याख्यान।

गद्गद् कण्ठ से व्याख्यान की शुरूआत हुई, और श्री विनोदमुनिजी के अनुकम्पापूर्ण हृदय और आदर्श बलिदान के विषय में प्रकाश डाला गया।

कान्ह मुनिने बताया कि,—उपाश्रय से चार फर्लांग दूर (लगभग) श्री विनोदमुनिजी जंगलसे वापिस आते समय एक वृक्ष के नीचे विराजमान थे। बहुत सुकुमार होने से वे बहुधा इस प्रकार आराम करते थे। उसी समय उन्होंने देखा कि रेल्वे सड़क पर दो गायें आ रही हैं। और इंजिन की व्हीसल बजने पर भी दूर नहीं जा रही हैं। तब उन्होंने अपने श्रम की परवाह किये बिना, तीव्र अनुकम्पा के वश होकर पात्र वहीं रखकर उन गायों को सड़क पर से दूर करने के लिए, वहां दौड़ना शुरू किया। गायों को हटाते समय पवन ज़ोर से आने से रजोहरण उड़कर पटरियों के आगे के किनारे पर जा गिरा। मुनिजी उसे लेने के लिए जा रहे थे और उस में वे फिसल पड़े। अपने को सम्हाल न पाये, अतः इस दुःखद घटना का निर्माण हुआ। उस समय मुनिजी के मुख से वेदना या पीड़ा की चीख़ लेश भी नहीं निकली थी; पर 'अरिहन्त अरिहन्त'—का रटन ही सुनाई देता था। इस आदर्श बलिदान को दो सिन्धी भाइयों और दो रबारिन बहनों ने देखा था पर दुर्घटना के बाद कोई भी वहां उपस्थित न रहा। सिन्धी भाइयों ने डर से विचार किया कि कहीं हम

को इस प्रकरण में साक्षी वनाकर व्यर्थ दौड़ादौड़ी का प्रसंग उपस्थित किया जाय। और वेचारी रवारिन वहनें तो इतनी घवड़ाई हुई थीं कि, वे न तो वहां खड़ी रह सकीं या न तो कुछ कह ही पायीं।

दूसरे दिन इस सत्य घटना के समाचार प्राप्त हुए। अस्तु। जो कुछ भी हुआ है उसके पीछे कुछ दैवी संकेत या तो आत्मा की गुप्त प्रेरणा समझनी चाहिए। मुनिजीने तो अपने जीवन और संयम को सफल वना दिया। छह छह वर्षों तक पिताजी से अनुरोध करनेवाले एवं किसी भी दिन पिताजी के आदेश का भंग नहीं करनेवाले मुनिजी को आयु की अल्पता मालूम हो गई, और विना किसी से कहे, मुनिजी घर से वाहर निकल गए। वहुत दूर जाकर खीचन में यकायक दीक्षा का उन्होंने अंगीकार किया। मुनिजी निरन्तर 'असंखयं जीविय मा पमायए' कहा करते थे। मन्त्र का मतलव है कि टूटी हुई आयु का फिर से सन्धान नहीं हो सकता, अतः क्षणमात्र का भी, प्रमाद नहीं करना चाहिए। यह जीवन अत्यन्त छोटे निमित्त को पाकर भी समाप्त हो सकता है। उसे किसी भी तरह फिर से जोड़ा नहीं जा सकता। अतः एव एक क्षण का भी प्रमाद नहीं करना चाहिए. और सातत्य से मुक्ति की साधना में तल्लीन रहना चाहिए।

(नोटः—श्री विनोदमुनि के जीवन की समीक्षा करते हुए लेखक को यह मालूम हो सका है कि, जब वे संसार में थे, तब अनेक विद्वान मुनियों के दर्शन करते थे, और चर्चा भी करते थे। ऐसी चर्चाओं के समय उनका प्रधान प्रश्न यही रहता था कि, इस पंन्चम काल में मोक्ष क्यों नहीं मिल सकता, यही, मुझे समझना है। इस चर्चास्पद प्रश्न में उनकी भावना, इस महादुःखरूप संसार को छोड़कर, किसी

भी संयोग में सिद्धि को प्राप्त करने की थी। हालाँ कि यह बात उन के पिताजी के ख़्याल में ही थी, पर मोहनीय कर्मों के उदय में दीक्षा की आज्ञा उन के कण्ठ में से बाहर न निकल पायी क्यों कि भावि भाव नियम के अनुसार बनने-घटना को कौन रोक सकता है?)

प्रबल भावना से प्रेरित होकर उन्होंने स्वयं दीक्षा स्वीकृत करली। ढाई महीनों तक के समय में उन्होंने अपनी भावना की पूर्ति भी कर ली! अहा! इसे दैवी भावना या गुप्त आत्म प्रेरणा के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? उनके शव की मुखमुद्रा भी कितनी सौम्य थी! ऐसी आकस्मिक घटना और ऐसी वेदना हुई थी, फिर भी उनकी मुखमुद्रा के ऊपर आर्त-भय-संक्लेश या ग्लानि का लेश भी संकेत नहीं मिलता था। जिस किसीने भी उन की मुखमुद्रा को देखा था, उन्होंने मुक्तकण्ठ से उन की प्रशंसा ही की है। सोलह सोलह घण्टों तक शव में दुर्गन्ध न रहना, सारी रात उस क्षत शरीर के जंगल में पड़े रहने पर भी और रक्त से भूमि लबाबल भरी हुई होने पर भी किसी भी जन्तु का वहाँ न आना, तीन तीन दिनों तक श्मसान में भस्म का ज्यों का त्यों रहना,—ये सब चिह्न उनकी मृत्यु की सफलता समाधि और शुद्ध जीवन के द्योतक हैं। आकस्मिक घटना का गोसेवारूप हेतु भी उनके जीवन की शुद्धता का परिचायक है। ऐसे विश्वास के लिए लेखक की आत्मा आन्तरिक प्रेरणा पा सकती है।

नोट :— लेखकने श्री विनोदमुनि की शिष्यता सम्पादित करने के लिए यह प्रकरणबद्ध रचना की है। श्री कान्हमुनिजी का व्याख्यान इस के लिए प्रमाणभूत माना जा सकता है। आगमन्याय से लेखकने यह मान लिया है कि, श्री विनोद-

मुनि का मनुष्यलोक में, देवलोक में से आगमन हुआ है। स्थानांग सूत्र के चतुर्थ स्थान में चतुर्भंगी है, उस में देवगति में से मनुष्य गति में उत्पन्न होनेवाले के चार लक्षण बताये गये हैं:–

(१) उदारचित्त का होना, (२) कण्ठ का सुस्वर होना, (३) धर्मानुरागिता होना, (४) देवगुरुओं की भक्ति का होना। विनोदमुनि का जीवन इन चारों लक्षणों से युक्त बना था। यह तो जगविख्यात बात है। इसी प्रकार मनुष्य देह को छोड़कर देवगति को प्राप्त करनेवालों के अनेक लक्षणों को, द्वादशांग शास्त्र उपवाय सूत्र में बताता है। इन लक्षणों के आधार पर, कल्पदेव लोक की उच्च देवगति की कल्पना की जा सकती है। अवश्य ही इन महामुनिने उसी देवगति को प्राप्त किया होगा। क्यों कि कथित लक्षणों से उनका समस्त जीवन व्याप्त था, और कालधर्म की प्राप्ति भी तो ऐसी ही थी।

द्वादशांगों का मन्तव्य है कि, जीवों का मनुष्य–भव, बहुत मात्राओं में दुःखपूर्ण ही है। कदाचित् उसमें सुख की प्राप्ति आ जाती है, फिर भी वह सुखप्राप्ति सिंधुसम पापपुंज के आगे बिन्दु की उपमा में ही रहती है। पूर्णतः पापभीरु आत्माएँ ही उच्च कोटिकी देवगति या सिद्धगति को प्राप्त कर सकती हैं। अवश्य ही विनोदमुनि की आत्मा ऐसी पापभीरु थी। तभी न उन्होंने नितान्त रूपसे पाप से बचने के लिए मातापिता की आज्ञा का अनादर किया! तभी तो उन्होंने स्वयमेव दीक्षा का अंगीकार किया, और आत्मा का कल्याण सिद्ध कर लिया।

संसार की विषयासक्ति ही भवान्तर में अनन्त संसार में मारा मारा घुमानेवाली निम्न गति के लिए कारणभूत है। शूरवीर पुरुष ही उसका त्याग कर सकते हैं। त्याग करने के बाद भी यदि मनोभाव सांसारिक आसक्ति में डूबे रहें, तो 'संथारा' करना ही आवश्यक समझा गया है।

जिस प्रकार अगंधन कुल के साप के डक मारने पर ज़हर चूसा नहीं जा सकता-वह स्वयं चूसता नहीं-ठीक उसी प्रकार धर्मवीर पुरुष, प्रव्रज्या को धारण करने के बाद 'संथारा' स्वीकृत कर लेते हैं, पर थूक कर चाटना उनके लिए असंभव ही है। ऐसे वीर पुरुष कौन थे? श्री वीराणी कुटुम्ब के वीर विनोदकुमार ही, कि जिन्होंने वीरता से पूर्ण त्याग कर के व्यवहारियों की व्यावहारिकता को धूल में मिला दिया।

इन मुनि को लेखक के कोटिशः नमस्कार हों। लेखक अनुरोध करता है कि, इन मुनिजी की अशाता करनेवाले सभी को ज़ाहिर में उन की क्षमा माँगनी चाहिए।

परिपूर्ण वैराग्य का उपदेश कर श्री कान्हमुनि, अपने उपदेश को पूर्ण करते हैं, और श्री विनोदकुमार के संसारपक्ष के मातापिता को धीरज मिलता है। दुपहर के लगभग दो बजे एक विराट शोकसभा का आयोजन होता है और पूर्वनि-र्दिष्ट हेतु से विनोदमुनिजी के जीवन का वहाँ बयान किया जाता है। अतिशोक भावना में शोकसभा का विसर्जन होता है।

दूसरे दिन, श्री दुर्लभजी भाई और मणिबहनने खीचन में विराजित श्री समर्थमलजी महाराजजी और तपस्वीजी श्री सिरोमलजी महाराजजी के दर्शन किये। वहाँ जब श्री विनोदमुनिने स्वयं दीक्षा ली थी उस जगह पर चाँदी की डिब्बी में सुरक्षित लुंचित केशों को और संसारी अवस्था के वस्त्रों को उन्होंने देखा, तब उनका हृदय भर आया। सारा शरीर शिथिल हो गया। पंडितजी महाराजने, श्री विनोदमुनि के असाधारण गुणों का स्मरण कराते कराते उन्हें असीम आश्वासन दिया।

शाम को मातापिता फिर से फलोदी आये। बाद में श्री विनोदकुमार की माताजीने महाराजजी से कहा :—

"महाराज जी! मेरी यही भावना थी कि अब मैं विनोद महाराज को उनके गुरुदेव के साथ, स्वयं पदविहार कर गुजरात में लाऊँगी, पर वह भावना पूरी नहीं हुई। आप गुजरात में जरूर आइएगा, और राजकोट को पावन कीजिएगा।

विनोदमुनि की आपने बहुत सहायता की है। आप उनके तारक हैं। वह उपकार कभी भूला नहीं जा सकेगा, पर अब राजकोट पधारने की कृपा कर दूसरा उपकार कीजिएगा।

श्री विनोदमुनि की स्मृति में कुटुम्बी जनों के पश्चात्ताप के परिणाम से व्रत पच्चक्खाणरूप से त्याग और पश्चात्ताप की भाषा।"

फलोदी में ही मुनिजी के समक्ष, माताजीने १००१ सामायिक करने की प्रतिज्ञा ली, और वनस्पतिकाय को यावज्जीवन (जावजीव) अभयदान दिया। पिताजी दुर्लभजी भाईने अपने से हुई मोहमय गलतियों का, तपस्वीजी लालचन्द्रजी महाराज के आगे स्वीकार किया, और एक मास में चार दिन, निवृत्ति-संवर-पूर्वक व्यतीत करने का व्रत भावपूर्वक धारण किया। महाराजजी के उपदेश का वह फल था। रसिकभाई वीराणीने विधिपुरःसर, नवकार मंत्र की एक माला प्रतिदिन फिराने की प्रतिज्ञा ली। पिताजी दुर्लभजी भाईने गद्गद् कण्ठ से तपस्वीजी लालचन्द्रजी महाराज का उपकार माना, और राजकोट पधारने का हार्दिक अनुरोध किया।

फलोदी श्री संघने मुनिजी के मातापिता को यथासमय स्टेशन पर पहुँचा कर, अल्पपुण्य फलोदी नगरी के ऊपर कृपादृष्टि रखने की प्रार्थना करते हुए व्यथित हृदय से विदा किया।

श्री विनोदमुनि के मातापिता राजकोट आये। श्री छोटालाल

भाईने रात्रि भोजन का त्याग किया। आठम-पाखी का उपवास और एक सामायिक करने की भी प्रतिज्ञा उन्होंने ली।

माताजी मणिबहनने देश में आकर तप शुरू किया। अन्तिम तिथि के दिन अठ्ठम यानी तीन उपवास करने शुरू किये। हर महीने में एक अठ्ठम आता है।

घर की सभी स्त्रियोंने अष्टमी, पाखी और निर्वाण तिथि-महीने में पाँच तिथियों-में कुछ न कुछ करने का निश्चित किया। उस में एकास(श)न, उपवास, आयंबिल आदि का समावेश होता है।

श्री दुर्लभजी भाईने राजकोट में आकर महीने की पाँच तिथियों में आयंबिल करने का निश्चित किया। साथ ही साथ उन दिनों को धर्मकरणी में ही व्यतीत करने का नियम किया।



सुइं च लध्धुं सद्धं च, वीरियं पुण दुल्लहं।
बहवे रोयमाणा वि, नो यणं पडिवज्जए॥

भावार्थ :- मनुष्य जन्म के साथ श्रुति और श्रद्धा के प्राप्त हो जाने पर भी संयम में पुरुषार्थ का होना तो दुर्लभ ही है। क्योंकि बहुत से जीव, धर्म में रूचि होने पर भी उसे ग्रहण नहीं कर सकते।

प्रकरण २०

बा. ब्र. श्री. विनोदमुनि की संसार अवस्था की जीवनपोथी में से

धर्म प्रेरक जीवन प्रसंग

*

सम्यग्दर्शन अथवा समकित.

व्यवहार से-

शुद्ध देव – अरिहन्त

शुद्ध गुरु – निर्ग्रन्थ, पाँच समितियों एवं तीन गुप्तियों से युक्त।

शुद्ध धर्म – केवली भगवान के द्वारा प्ररूपित–कथित।

निश्चय से-

अरिहन्त सिद्ध भगवान के समान गुणमय बनना। संघ का संचालन– जिस में ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तप और दान, शील ओर तप भावना के कार्य संनिविष्ट होते हैं।

समकित अथवा सम्यक्त्व।

१ आत्मा स्वयं अपना निर्णय कर ले, उसे समकित कहा जाता हैं।

२ आत्मा अपने कर्तव्यों का निर्णय करे, उसे समकित कहते हैं।

३ अपने कर्तव्यों से उपार्जित फलों का निर्णय आत्मा कर ले, उसे समकित कहा गया है।

४ जिस के सिवा हम रह सकते हैं– ज़िन्दा रह सकते हैं– वह आत्मा का गुण कदापि नहीं माना जा सकता।

समय के चार प्रकार।

१ समय–काल, जो सूर्य की गति से होता है, वह केवल ढाई द्वीपों में ही है; क्यों कि उन ढाई द्वीपों में ही सूर्य गति करते हैं। ढाई द्वीपों के बाहर असंख्य सूर्य चन्द्र हैं, पर वे गतिशील नहीं हैं। जहाँ हैं, वहाँ वे स्थिर ही रहते हैं।

इन ढाई द्वीपों में समय रूप काल है उसे व्यवहार काल' कहा जाता है, क्यों कि सूर्य की गति से काल उत्पन्न होता है। वह व्यवहारकाल–निश्चयकाल–हरएक जीव–पुद्गलों के ऊपर प्रभुत्व रखता है।

२ समय यानी सिद्धान्त – देखिए आचारांगसूत्र।

३ समय का मतलब मत से है (३६३ दल)

४ समय का तात्पर्य आत्मा से है।

भगवानने पन्नवणाजी में आदेश दिया है कि,

'जं समयं जाणइ, तं समयं न पासइ।'

भगवानने 'जाणइ–पासइ' जो भाव प्रकाशित किये हैं, वे आत्म सत्ता की अपेक्षा से हैं। जो सत्ता 'ज्ञातव्य' है, वह 'दृश्य' नहीं है, और जो सत्ता 'दृश्य' है, वह 'ज्ञातव्य' नहीं है। 'ज्ञातव्य' सत्ता को 'ज्ञानोपयोगी' कहा जाता है, और 'दृश्य' सत्ता को 'दर्शनोपयोगी' माना जाता है।

वैराग्य।

सांसारिक पदार्थों से विरक्ति ही सही वैराग्य अवस्था है। आत्मलग्न स्वभावरमण ही वैराग्य है।

मनुष्य को उचित है कि अपने मनमें निरन्तर वह भगवान का ही चिन्तन रखे। दूसरा संकल्प वह, न

आने दे, क्यों कि जीवन अल्प और अनित्य है, न जाने कब अचानक ही इस जीवन का अन्त हो जाय।

अपनी निपुणता प्रदर्शित करने के लिए कभी किसी से कुछ भी नहीं कहना चाहिए किन्तु हितबुद्धि से ही कहना चाहिए।

सन्तसमागम।

जिज्ञासाबल, विचारबल, ध्यानबल और ज्ञानबल की वृद्धि के लिए आत्मार्थी जीव को तथारूप ज्ञानी पुरुष के समागम की विशेष उपासना करनी उचित है।

ज्यों ज्यों निःस्पृहता बलवान हो, त्यों त्यों ध्यान बलवान होता है और कर्म भी बलवान हो सकता है।

वेशपूजा।

परिग्रहधारी यतियों का सन्मान करने से मिथ्यात्व को पोषण मिलता है, मार्ग अवरुद्ध होता है।

दाक्षिण्य-सभ्यता-की भी रक्षा करनी चाहिए।

जीव को त्याग करना अच्छा नहीं लगता, और कुछ करना अच्छा नहीं लगता। उसे तो मिथ्या निपुणता-होशियारी की ही बातें करनी हैं।

ब्रह्मचर्य।

सर्व चारित्र्य वशीभूत करने के लिए, सर्व प्रमाद दूर करने के लिए, आत्मा में अखण्ड वृत्ति रखने के लिए और मोक्ष सम्बन्धी सभी साधनों की जय-प्राप्ति करने के लिए 'ब्रह्मचर्य' अद्भुत सहकारी साधन है, अथवा मूलभूत ही है।

प्रतिक्रमण।

प्रतिक्रमण यानी पीछे हटना। आत्मा स्व-भाव को

भूल कर वि-भाव में गई थी। वहाँ से लौट कर स्व-भाव में स्थापित करना ही 'प्रतिक्रमण' है।

व्रत प्रत्याख्यान।

निम्नलिखित पच्चक्खाण कार्त्तिकी पूर्णिमा तक के हैं। तदुपरान्त भी जहाँ तक पाले जायँगे, लाभ ही होगा।

१ चाय पीने का प्रतिबन्ध।

२ पन्द्रह द्रव्यों से अधिक का त्याग।

३ कन्दमूल- आलू, प्याज, लशुन, गाजर आदि का त्याग। शारीरिक कारणों से अदरख हलदी आदि पदार्थों का उपयोग करना पड़े, तो उनका अपवाद। (आगार।) किसी भी जगह पर भोजन के लिए जाना पड़े,, और वहाँ दाल आदि में ऐसे पदार्थ डाले हों तो वहाँ उनका आगार। (अपवाद)

४ इस चातुर्मास में वेरावल से चार मील के आगे जाने का प्रतिबन्ध। अनिवार्य कारणवशात् राजकोट का आगार।

५ पाँच वर्षों तक फिल्म आदि मनोरंजन 'शो' देखने की मेरे लिए मनाही है।

ज्ञानवृद्धि के कारण।

१ निद्रात्याग से ज्ञान बढ़ता है।
२ ऊनोदरी से ज्ञानप्राप्ति होती है।
३ मितभाषिता ज्ञान की उत्पत्ति का कारण है।
४ पण्डित की सोहबत से ज्ञान लाभ होता है।
५ विनय से ज्ञान मिलता है।
६ कपट रहित तप से भी ज्ञान की उपलब्धि मानी गई है।
७ संसार की असारता की पहचान ज्ञानदायक है।

८ परस्पर चर्चाविचारणा भी ज्ञानोत्पत्ति का कारण है।
९ ज्ञानीजन के पास अध्ययन भी ज्ञानजनक है।
१० इन्द्रियों के विषयों का त्याग करने से भी ज्ञान बढ़ता है।
११ उद्यम करने से भी ज्ञानवृद्धि होती है।

बा. ब्र. श्री विनोदमुनिने एक दीक्षार्थिनी बहन को लिखा हुआ पत्र।

"देखिए! अब आपको दीक्षा लेने के भाव पूरे हैं, तब ज़रूर ही दीक्षा ले लीजिए, और यथासाध्य शीघ्रातिशीघ्र ही तैयार बन जाइए। गुरुपद की धारणा भी कर लीजिए, और त्वरा से उनके चरणों में चली जाइए। उनके साथ ही रहिए। बड़े बापूजी, माताजी, सास ससुर—सभी की अनुमति ले लीजिए। अपनी गुरुआनी के साथ ही जीवन व्यतीत करने का संकल्प कर लीजिए। उनकी नजर में आप जब दीक्षा के योग्य हों, तब यथाशीघ्र दीक्षांगीकार कर ही लीजिए। त्याग और वैराग्य में आप बहुत आगे बढ़ें।

पौद्‌गलिक सभी पदार्थ, शुष्कतृणवत् तुच्छ हैं, ऐसा आप समझिए।

मित्रता और दुश्मनी तो हरएक जीव के लिए अनेक प्रकार से होती ही रहती है।

प्रतिज्ञा।

आज से दो वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत को धारण किया है। —विनोद (११ दिसम्बर, १९५९)

आज से छह महीनों तक एक मास में बीस माला करनेका नियम धारण किया है। (१५ दिसम्बर, १९५९)



बम्बई से मैंने ३७१) रुपये लिए। उस रकम में से

७१) बम्बई से रतलाम के टिकट के, और रतलाम में २०० रूपयोंकी मालाएँ, साधु मुनिराजों के लिए रजोहरण ९६ गुच्छे ४८ और ६० डझन मालाएँ आदि चीजें खरीद कीं। अवशिष्ट पैसे टेक्सी, मजदूरी, बक्षीस आदि में दिये।



कुछ धर्मप्रेरक हृदयोद्गार।

'क्रान्ति' क्या करनेवाली है ? सूत्रों में ही तो सब लिखा है।

अब हम अमर भये न मरेंगे।

शौर्य अगर हो, तो एक वर्ष का काम दो घडियों में कर लो।

जगत में अनेक काल तक लिया, कम लेना सीखो।

चतुर्थ आरे की अविरत प्राप्ति होने पर भी 'पुरुषार्थ करने से ही मुक्ति मिलती है।

अजीर्ण दूर होने पर ही अमृत मिलता है-भाता है-।

शान्ति से ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है।

आत्मसिद्धि के लिए द्वादशांगी का ज्ञान पढते हुए बहुत समय बीता जा सकता है, पर शान्ति का सेवन करने से तुरन्त ही आत्मसिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

"णिग्गन्थं पावयणं अयं अट्ठ अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे। सद्दहामि णं भन्ते। णिग्गन्थं पावयणं"

जिज्ञासा।

१ भगवान कौन हैं ! अरिहन्त और सिद्ध।

२ भारत में ऐसे कितने धर्म हैं, जिनके अवलम्बन से जीव मोक्ष की ओर जा सकता है ? – जैनधर्म।

३ जैनेतर धर्म में कुछ सही बातें भी आती हैं, तब

फिर उसे पढ़ने में क्या दोष है? कुछ सही बातों के साथ गलतफहमियाँ भी आ जाती हैं।

४ आत्मा का त्रैकालिक स्वरूप क्या है? चेतना।

५ विद्वान, साधु-श्रावक, अपना कोई स्वतन्त्र अभिप्राय दे सकते हैं या आधारपूर्वक ही बोल सकते हैं?
उनका अभिप्राय सूत्रसंगत ही होना चाहिए।

६ साधु संसार का त्याग कर, वीतरागानुसारी और उन्हीं के आज्ञापालक होते हैं क्या वे अपने उस आराधन ध्येय को छोड़कर किसी काम को कर सकते हैं?
जिनाज्ञा के अतिरिक्त वे कुछ नहीं कर सकते।

७ जैन दर्शन में साधुश्रावकों के लिए बताई गई क्रिया का ध्येय क्या है? अथवा मोक्ष प्राप्ति का रहस्य क्या है?
सम्यक्परिणति।

८ हमें कैसे यह प्रतीति हो सकती है कि हम मोक्ष के सही रास्ते पर हैं? स्वानुभूति से ही।

९ भाषा समिति का क्या अर्थ है?
निरवद्य और सही मोक्षमार्ग का कथन। जिन प्रवचनों के आधार से मोक्षमार्ग की प्ररूपणा करना और शुद्ध भाषा का व्यवहार रखना।

प्रकरण २१

श्री विनोदमुनि को श्रद्धाञ्जलि।

खीचन से शास्त्रविशारद, स्याद्वादशैली के उच्च कोटि के ज्ञाता, १००८ मुनिजी श्री समर्थमलजी महाराज जी का विनोदमुनि के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में प्रमाण पत्र भूत-

निवेदन।

(वह निवेदन मुनिजी के अनुभवों से समेत है-उसे नीचे दिया जा रहा है)

प्राथमिक एवं अल्पकाल के परिचय से मुझे उन के विषय में अनुभव हुआ कि उनकी धर्मप्रियता और धर्माभिलाषिता अट्ठिमिंजा पेमाणुरागरत्ते का परिचय करानेवाली थी। संसार मे प्राप्त प्रचुर वैभव की ओर उनकी रुचि ही नहीं दीखाई देती थी। वे तो वीतरागवाणी के संसर्ग से विषयविमुख धर्मकार्यों में कटिबद्ध और सर्वदा तल्लीन ही दीख पड़ते थे। खास तौर से परिचय के अभाव से भी उनकी वैराग्यधारा से, उनकी धर्मानुरागिता और जीवनचर्या से कठिन कार्य करने के समय में भी घभराहट के बदले सुखानुभव की वृत्ति लक्षित की जाती थी।

इन आशास्पद मुनिजी से जैन समाज को अधिक लाभ होने की आशा थी; पर उन का आयुबल कम होने से वह आशा फलीभूत न हो पाई।

सद्गत आत्मा, मोक्ष की शीघ्रातिशीघ्र अधिकारी हो, यही कल्याणकामना है।

'सम्यग्दर्शन'-मासिक के सम्पादक की बहुमानपूर्वक श्री विनोदमुनि को श्रद्धाञ्जलि।

योगनिष्ठ महापुरुष का श्री विनोदमुनि के लिए अंतर्नाद।

उपर्युक्त 'सम्यग्दर्शन' मासिक के सम्पादक, श्री रतनलालजी डोशी, सैलाना जैन समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। जैनदर्शन का उनका अभ्यास और तदनुकूल आचरण उनके जीवन की विशिष्टता है। श्री विनोदमुनि के निर्वाण के बाद उन्होंने मुनिजी के मातापिता के ऊपर एक आश्वासन पत्र लिखा है। अपने मासिक पत्र में भी विनोदमुनिजी को उन्होंने श्रद्धांजलि दी है, और मुनिजी का बहुमान किया है।

वे बताते हैं कि श्री विनोदमुनिने संसार में मेरा सम्पर्क किया था। जिस परिचय के विषय में निम्नलिखित शब्द प्रकाश डाल सकते हैं।

स्वर्गीय श्री विनोदमुनिजी से मेरा पहला परिचय, लगभग सवा वर्ष पूर्व यहाँ-सैलाना में-ही हुआ था। एक दिन अचानक वे रतलाम के दो भाइयों के साथ यहाँ आये। उनका विचार तो दो घण्टों के बाद ही वापिस जानेका था, परन्तु बातचीत में मन लग गया, और रातभर यहाँ ठहर गये। रतलामवाले साथी तो जल्दी ही सो गये, परन्तु हमने रात के दो बजे तक चर्चा की। प्रातःकाल भी रतलामवाले साथी तो जल्दी ही करते थे; परन्तु उन्होंने फिर बातचीत की और दूसरे मोटरबस में रवाना हुए। उस चर्चा के दरम्यान ही मैं समझ गया था कि वे कितने पवित्र आत्मावाले थे। उस समय मी मैं बीमार था। मैं कभी बैठे बैठे बात करता, तो कभी सोते सोते। पर वे तो बैठे ही रहते थे; ध्यान से बात सुनते थे और पूछने योग्य प्रश्नों को पूछते थे। उनकी हार्दिक सरलता और पवित्रता की गहरी छाप मुझ पर पड़ी थी।

खीचन में मुझसे उनकी बातें हुई। उन्होंने कहा था कि, "मैंने एक वार अभिग्रह कर लिया था कि जब तक दीक्षा के विषय में स्पष्ट खुलासा नहीं हो, तब तक, आहार नहीं करूँगा। फिर मातेश्वरी के प्रयत्न से आश्वासन मिल गया था।"

उनकी बातचीत पर से मैंने अनुमान लगाया कि उनकी तमन्ना ज़ोरदार थी, फिर भी उस विषय में उन्होंने अपनी उतावली को प्रकट नहीं किया। मेरे विचार से उनका अनुकूल क्षेत्र सौराष्ट्र ही था। पू. पुरुषोत्तमजी महाराज के पास ठीक रहता। मैंने ऐसा सोचा था, इस लिए मैंने उनसे पूछा भी था। वे उधर होनेवाले, कोलाहल के भय–विरोध से ही मारवाड़ चले गये थे। खैर, ये बातें तो गई; उनकी चर्चा अब व्यर्थ है। अब क्या हो सकता था?

मुझे तो उनकी हार्दिक पवित्रता, सरलता, त्यागप्रियता, धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा और साधनारत जीवन ने अधिक मुग्ध कर लिया था। यदि वह पवित्रात्मा संसार में रहती तो समाज के लिए, संस्कृति के लिए और निर्ग्रन्थ धर्म के लिए बड़ी उपकारक सिद्ध होती।

उनके अचानक देहावसान ने मेरे मन में सन्देह भर दिया था। मैंने इस विषय में फलोदी लिखा भी था। पर सन्देह गलत साबीत हुआ। इसी लिए मैंने विलम्ब से समाचार छापे।

"श्री विनोदमुनि के स्वर्गवास के विषय में योगनिष्ठ मुनि का अभिप्राय।"

श्री विनोदकुमार मुनिजीने तेजोलेश्या के परिणाम में देह छोड़ी; और दूसरे देवलोक में दो पल्योपम की स्थितिवाले महान ऋद्धिशाली देव हुए हैं, ऐसा सम्भव है।

स्वर्ग से आई हुई आत्मा, पुनः स्वर्गप्रयाण कर गई।

मैं तो विश्वास करता हूँ कि, वे वहाँ से 'च्यवन' कर मोक्ष प्राप्त करेंगे। आप को व मातेश्वरीजी को शोक नहीं कर के धर्मध्यान में ही समय बीताना चाहिए। श्री विनोदकुमार जी आपको संसार की असारता की महान शिक्षा दे गए हैं। कम से कम दृढ श्रद्धा, विशुद्ध श्रद्धा यथाशक्य शुद्ध धर्म प्रचार की भावना, स्वाध्याय, विरति की ओर अधिक ध्यान रखने की विनति है।

प्रत्येक व्यक्ति को यह सदैव याद रखना चाहिए कि, मुझे एक दिन अवश्य मरना है। यदि यह सोचकर वह मृत्यु सुधारने के लिए सावधान रहे, और अपनी परिणति सुधारता रहे, तो उसकी दुर्गति हो ही नहीं सकती।

मैं आप से अधिक क्या निवेदन करूँ? आप स्वयं सुज्ञ हैं। डाकटर साहब का सत्संग करते रहेंगे, तो उनसे अधिक लाभ होगा। व्यवसाय प्रधान जीवन में से थोड़ा समय बचा कर स्वाध्याय आदि में लगाएँ तो उत्तम होगा।

श्रीमान् सेठ, रामजीभाई से तो राजकोट में साक्षात्कार हुआ था; परन्तु आपश्री से मिलने का सौभाग्य नहीं हुआ। अब मेरा उधर आना भी नहीं होता। कभी योग हुआ तो मिलेंगे।

आप सपरिवार प्रसन्न होंगे। कृपा रहे। योग्य सेवा फरमावें। पत्रोत्तर प्रदान करें।

	विनयावनत,
रतनलाल डोशी,	रतनलाल डोशी।
सैलाना (म. प्र.)	ता.क. मातेश्वरीजीको प्रणाम निवेदन करें।

*

यतो धर्मस्ततो जयः।

श्री विनोदमुनि के बारे में सुना कि, उन्होंने स्वयमेव

भागवती दीक्षा अंगीकार की । वैराग्य की इतनी सीमातीत उत्कृष्टता, लक्ष्मीपुत्र का ऐसा अपूर्व त्याग सुनकर मन मचल उठा उस आध्यात्मिक आत्मा के दर्शन के हेतु ।

किन्तु समयचक्र चला । एक दिन सहसा सुना तो चौंक पड़ा । उफ ! मार्मिक आघात ! दिल के अरमान दिल में रह गए । वाह रे ! क्रूर काल ! !

'चन्द्र चमका, लेकिन एक झलक दिखाकर ही अस्त हो गया ।'

लक्ष्मीलाल जैन, साहित्यरत्न,
प्रधानाध्यापक,
श्री महावीर मिडिल स्कूल, खीचन ।

श्री विनोदमुनि के विषय में श्रीमान् सेठ चम्पकलालजी गोलेछा (खीचन) का अनुभव ।

राजकोट निवासी श्रीमान् दानवीर सेठ श्री. दुर्लभजी शामजी वीराणी के सुपुत्र श्री विनोदकुमारजी के प्रथम दर्शन खीचन में हुए। वे जिस दिन यहाँ आए, उसी दिन स्वयं-दीक्षित होकर 'अणगार' बन गए। थोड़े दिन यहाँ रुककर उनका फलोदी पधारना हुआ । इस ओर मैं मद्रास चला गया; इससे फिर से मुझे उनके दर्शन का शुभ अवसर (सौभाग्य) प्राप्त नहीं हुआ । हालाँकि उनके साथ मेरा परिचय स्वल्प ही था, फिर भी उनके त्याग वैराग्य की गहरी छाप मेरे दिल में अंकित हो गई । अतुल धनराशि, सुखसम्पत्ति, भोगोपभोगों के लिए प्राप्त सामग्री एवं विशाल कुटुम्ब परिवार, साथ ही साथ स्नेहमूर्ति पिताजी तथा मोहममतामयी माताजी आदि का त्याग उनका महान् त्याग ही था। यह त्याग एक बार तो हमारे दिल में उन प्राचीन राजा महाराजाओं और चक्रवर्तियों के किये हुए त्याग का स्मरण करा देता है ।

धनवैभव में पोषित उनका सुकोमल शरीर जितना सुकुमार था, उतना ही संयम मार्ग में आते हुए कष्टों को झेलने के लिए सहिष्णु भी था। उनका सौम्य मुखारविन्द सर्वदा वैराग्य-भावना से ओतप्रोत और प्रसन्न दीख पड़ता था। किसी के पूछने पर उनके मुख से ये ही शब्द निकलते थे कि, "बहुत आनन्द है"। वे नपा-तुला ही बोलते थे, पर आध्यात्मिक भावना में और ज्ञानध्यान में तल्लीन ही दीख पड़ते थे।

अनुमानतः वे भविष्य के एक महात्मा थे, और जैन-समाज को उनकी ओर से बहुत लाभ मिलने की पूरी संभावना थी। किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि जैनसमाज के ऐसे अहोभाग्य नहीं थे, अथवा क्रूर काल को वह इष्ट न था। अतः यह आकस्मिक रेल्वे दुर्घटना हुई। वे दिवंगत हो गये।

जब ये हृदयविदारक दुःखद समाचार मुझे मद्रास में मिले, तब मेरे दिल में अत्यन्त आघात लगा।

दिवंगत आत्मा को अल्प समय में अनन्त और अक्षय मोक्ष सुख की प्राप्ति हो, और उनके शोकातुर मातापिता एवं सकल परिवार को इस महान कष्ट को सहन करने की शक्ति प्राप्त हो; यही शासन देव से प्रार्थना है।



स्वर्गीय विनोदमुनि यानी हमारे जैन समाज की अमर विभूति। श्री बीराणी कुटुम्ब का कुलदीपक विरल कुमार।

उस अमर आत्मा का मुझे शारदाग्राम में केवल चार दिनों का संपर्क रहा। वह परिचय अल्प होते हुए भी अविस्मरणीय है। उनमें दिनप्रतिदिन ज्ञानगर्भित वैराग्य के संस्कार वृद्धि को प्राप्त हुए दृष्टिगोचर होते थे। गुणानुरागिता, दृढ संकल्पशक्ति, औदार्य, सरलता और नाम के समान विनयादि

गुण, अरविन्द की तरह अलिप्त मुनिजी की संसारावस्था में भी सहजरूपसे प्रवर्तमान थे। गुरुदर्शन, तत्त्वचिन्तन, वाचन और धर्म की तमन्ना—ये सब पदार्थ उनके जीवन की आध्यात्मिक—नैतिक—खुराक थी।

जब देखें तब उनके मुख से यही वाक्य निकलता था कि, "इस संसार सागर में से यथाशीघ्र निकलकर सद्गुरु के चरणों में स्वात्मार्पण कर के भागवती प्रव्रज्या का अंगीकार कर भाग्यशाली बनना चाहिए।"

यह उनकी आन्तरिक महत्त्वाकांक्षा, उनके बाह्य जीवन में भी ताना—भरनी की तरह ओतप्रोत हो गई थी। अन्तर्ज्ञान—दर्शनमय—सच्चिदानन्द स्वरूप की ओर रुचिने वेग धारण किया, और वे स्वयं दीक्षित बन गए। केवल दो महीनों तक ही प्रसन्न भावसे कठिन चारित्र्य रखकर गुरुकृपा को प्राप्त किया। भगवती अहिंसा की आराधना करते करते उन्होंने प्राणार्पण भी स्वीकृत कर लिया।

सर्वज्ञ प्रभु वीतराग के मार्ग मे वे निःस्पृही पथिक बन गए, और प्रत्येक साधक जीव के लिए वे अनुकरणीय आदर्श रखते गए।

हमें चाहिए कि हम अपने महामूल्यशाली मानवजीवन में उनके गुणों का और उनके भगीरथ प्रयत्न का संक्रमण करें।

सन्तचरणरज अल्पज्ञ बाला,
भद्रा शान्तिलाल शाह।

*

श्री महावीराय नमः।

पूज्य गुणानुरागी शासनदीपक महापुरुषार्थी
श्री विनोदमुनि को श्रद्धाञ्जलि।

"माया के बन्धनों को तोड़ने के लिए त्याग के अति-र... कोई उत्तम शस्त्र नहीं है।"

उन वैरागी-विनोदमुनि के चेहरे पर त्याग का निर्मल प्रकाश और आनन्द था। उनके नयनों में समकित भाव का अपूर्व तेज झलक रहा था। उनके ललाट के ऊपर शाश्वत सम्पत्ति की लब्धि का परम सन्तोष था। उनके शरीर में सर्वत्याग की किरणें उमड़ रही थीं। वे सभी सांसारिक बन्धनों लालसाओं और लुभानेवाले सभी सांसारिक सुखों की सभी कल्पनाओं से विराम लेने के लिए लालायित बन गए थे।

संसार के सभी सुख-स्वप्नों को छोड़कर वे भगवान महावीर के त्याग-मार्ग के योगी बनकर, सक्रिय रूप से उस मार्गपर आरूढ होकर पुकार करते थे कि, "महा मंगलमय विश्वकल्याण के अनादि मार्ग में मेरा स्वीकार हो जाय।" ऐसी पुकार करते हुए उनके अन्तस्तल में आत्मकल्याण का भावनृत्य प्रकट हो रहा था।

आपने इतनी छोटी वय में अपूर्व और महान कार्य किया। हमें स्वप्न में भी खयाल नहीं था कि आपका पुरुषार्थ इतना प्रबल और शौर्यसमेत होगा। धन्य है आप को कि ऐसे राज्यवैभवसम सुखों को छोड़कर-पूर्ण ऋद्धि सिद्धि का त्याग कर-वैराग्य के निर्झर दिल में बहाकर, ब्रह्मचर्य की रोशनी जलाकर, वीरवेशभूषा को पहनकर, क्षमा और तप के आयुध लेकर, वीररत्न बनकर आप जीवनरूपी संग्रामक्षेत्र में कर्मशत्रु के साथ युद्ध करके उन्हें जीतने के लिए रणपण्डित बन गये- युद्ध में सज्ज हुए।

हमारा हृदय गर्जन कर उठा था कि, जैन शासन में अपूर्व सूर्य प्रकाशित हुआ। उस सूर्य की बोधरूपी किरणों से आकृष्ट भव्य जीवों का उद्धार होगा, पर प्रकृति के पास किसका चलता है? विकसित सुमन मुरझा गया! हृदय में अतिवेदना

हुई। हमारे ऊपर आपने किए हुए उपकारों का ऋण हम कब आपको चुकाएँगे ?

आप तो जगत् में चमककर चले गए। चारों ओर सुमधुर परिमल पसारकर जीवन को धन्य बना गए।

आप जहा हों वहाँ सुखी रहें, और स्वल्प समय में कर्म के विजेता बन कर, शाश्वत लक्ष्मी को प्राप्त कर, दिव्य ज्योति को प्रकट कर, आत्मा के आनन्दमय अखण्ड सुख को प्राप्त करें यही अभ्यर्थना है।

—नन्दनज्योति दामाणी



विषम वियोग मुनि जी आपका,
नाम लेते ही नयन आँसु-धार री,
विनोदमुनि ! गोरक्षा अर्थ प्राण दे दिये ॥
जन्म की भूमि सुदान पोर्ट में,
जनक जननी धन्य हुए आज री —विनोदमुनि०
गोद धन्य हुई मणि-भगिनी यहाँ,
कुल उजाला दुर्लभजी श्रीमान ही —विनोदमुनि०
ऋद्धि सिद्धि वीराणी सेठकी,
उसे छोडा, हुए हा ! अणगार री —विनोदमुनि०
आज्ञा न दी थी मात - तात ने,
मोहनीय कर्म उदित भाग री —विनोदमुनि०
खबर न की पिता औ' मात को,
पहुँच गए मरुभूमि - मँझधार री —विनोदमुनि०
मेहसाना नापित को बुला लिया,
मुण्डित होकर पहुँचे खीचन गाम री —विनोदमुनि०

वन्दन किये हैं मुनि राज को,
खुद पढे हैं दीक्षा-पाठ प्रमाण री -विनोदमुनि०
बीताते जीवन आध्यातम को,
ढाई माह में किया जी कल्याण री -विनोदमुनि०
दर्शन करने के भाव हृदय में,
रहे अधूरे माता के भाव री -विनोदमुनि०
धम धम सी अगिन-गाड़ी आ पड़ी!
बचाये थे धेनुत्रय के प्राण री -विनोदमुनि०
करुणा न आयी कुटिल काल को,
हड़प लिए विनोदजी के प्राण री -विनोदमुनि०
डूबा है संघ सागर शोक के,
डूबे हैं ये अग्रज परिवार री -विनोदमुनि०
सूरज हुआ अकाल अस्त यों,
फैलाती किरणें चहुँ ओर री -विनोदमुनि०
अस्तंगत ज्योत्सना बन तो गई,
शीतलता चन्द्रमयी भात री -विनोदमुनि०
तारक हुआ यकायक लीन यों,
तेज पुञ्ज फिर भी वहा जग री -विनोदमुनि०
यों ही मुरझा गया प्रसून हा!
आती है किन्तु गन्ध रेल री -विनोदमुनि०
शान्ति दें 'वीर' शूर आतम को,
अल्प समय किया स्वकल्याण री -विनोदमुनि०
स्वीकारें हर की काव्यअञ्जलि,
शान्ति! शान्ति शान्ति सुखदाय री
विनोदमुनि! गौरक्षा अर्थ प्राण दे दिये!

*

श्री विनोदमुनि को शोकांजलि।

विनोदमुनि ऐसा क्यों किया रे! मरण का वरण किया। टेक।
मुनि के वेश में मातापिताको, दर्शन का अभिलाष; (२)
मरुप्रदेश के बने अतिथि, भग्न हुई सब आश। वि.
तार आया कि मातापिता के, हिय में शोक तना; (२)
चाचा छगन जी बोल उठे– "हा! कौन उपाय बना?। वि.
आंखों में आंसू बहे री! सावन भादों चूर; (२)
हिय विदारक रुदन होते, सूख गये मुख नूर। वि.
छोटी वय में दीक्षा ले ली, ज्ञान के पारावार! (२)
गुरुबन्धु को विरहाग्नि की, उठी अंग में ज्वाल। वि.
लघु बान्धव तो रोने लगे री! दुःख निःश्वास भरे; (२)
शूल विरह का लगा दिलों में, कैसे धीरज धरें?। वि.
जन्मभूमि में आये होते तो, देखते आप का मुख; (२)
विदेशमें आप सोये री प्रिय! दिल में बड़ा दुःख। वि.
मित्र आप के विलाप करते, अविरत-दिन औ' रात–; (२)
हृदय बिंध गये ह! हमारे, विवेक विनय भात। वि.
राजकोट में कीर्तिगाथा, घर घर फैल गयी; (२)
नाम लेतें ही हृदयतन्त्री, चूर्ण विचूर्ण बनी। वि.
दुर्लभ पिताजी दुःख सागर में, डूब गये हैं आज; (२)
इकहत्तर पीढियाँ तैराने, बन गये जी जहाज़। वि.
अल्प समय में की तैयारी, नहीं जाना यह तात! (२)
बोया खेत हा! बिगड़ गया, मचा उल्कापात। वि.
क्षमादृष्टि से पढें पाठक, पिंगल ज्ञाना ज्ञान; (१)
आकर्षण था नाम गुण का, लगे मुझ को बाण। वि.
कम्पित लेखिनी लिखते लिखते, थर थर कम्पित काय; (२)
पनजी अर्पित करता अंजलि, नीर नयन से जायँ। वि.

–भक्तकवि पनजी जेमलभाई फेचड़िया, दूधरेजवाला।

एकबार पधारें राजकोट में;
मातापिता के दरशन अभिलाष री! विनोदमुनि।
वाणी सुमिरन हमें दिल में बसा;
स्नेह का अगाध था प्रवाह री... विनोदमुनि.
दया आयी दिल में आप के;
गोरक्षण में अर्पित किए प्राण री.... विनोदमुनि.
जाना नहीं था ऐसा जीव में;
यकायक ही हुए अन्तर्ध्यान री.. विनोदमुनि.
दिल से दीक्षा का वरण कियो;
जीवित योगी दर्शन के अभिलाष री.. .विनोदमुनि.
एकबार पधारें औ' पावन करें;
भाई-भाभीगण देखते हैं बड़ी वाट री ...विनोदमुनि.
"सोया सत्पुत्र हा! मरघाट में;"
माता-मणिबहन का विलाप री. ..विनोदमुनि.
परदेश जाकर सिधारे क्यों वहां?
लिखे होंगे ऐसे विधिने लेख री.... विनोदमुनि.
बहनें रोती हैं गला फाड़ के;
बड़े बापू रोते बम्बई-पुर री. विनोदमुनि.
सूनी हो गई गली दिवान की;
राजकोट में हुआ हाहाकार री.... विनोदमुनि.
मोटर में मौज मनाते यहां;
ड्रायवर भी देखता वडी वाट री. ..विनोदमुनि.
पनजी दिलगीर हुआ दिलमें बडा,
विनोदमुनि का रहो अमर नाम री. विनोदमुनि.

—भक्तकवि पनजी जेमलभाई फेच्चड़िया,
दूधरेजवाला।

*

हा ! हा ! विनोदमुनि चल बसे !

लेखक : कवि श्री मिलापचन्द्रजी ढड्ढा।

छाई क्षुब्धता अपार, आत्मव्यथा का न पार;
हुआ वज्र सा प्रहार, हा ! हा ! विनोदमुनि चल बसे॥टेक॥

प्रिय पुत्र थे दुर्लभजी शाह के, नव दीक्षित थे सिर्फ ढाई माह के;
राजकोट घरबार, बड़ा दिव्य परिवार, मणिबहन के कुमार...

स्वप्न में भी न थी आशा हमको, दग्ध कर देगी काल ज्वाला उनको;
कैसा बना होनहार, रंज होता बार बार, दिल बड़ा बेकरार...

अनुकम्पा के मुनि अवतार थे, आत्मत्याग के अपूर्व आगार थे;
करुणा के पारावार, सिद्ध होता बार बार, घटनास्थल साक्षीदार...

जान गायों की मुनिने बचाई, बाज़ी प्राणों की अपने लगाई;
टला गायों का संहार, होते थे मुनि लाइन पार, हुआ ऍंजिन एकदम वार

जीना और मरना मुनि ने ही जाना, गौरक्षण का मर्म पहचाना;
किया गायों का उद्धार, देकर प्राणों का उपहार, हो गए अमरवीर अणगार

सीधे सादे थे साधक हमारे, सत्य संयम क्षमाशील सारे;
दिव्य गुणगण अगार, जनजन हिया हार, जिन शासन श्रृंगार

पूज्य श्रद्धेय लाल मान कान्हमुनि पार्श्व मुनि की भी धुनि यह पुनि पुनि;
शोक संकट निवार, धैर्य रखे परिवार, धन्य सन्त सुकुमार....

चिर शान्ति प्राप्त हो उन्हें प्राप्त हो, गुण गाथा मुनि की विश्वव्याप्त हो;
विनति है बारबार, अहो त्रिशलाकुमार, हो 'मिलाप' भव पार.

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

❀

श्रद्धांजलि – गीतमाला

त्यागपूर्ण जीवन से जगमे, (२) नाम कमाया न्यारा री ! टेक
मुनि विनोद के गुण गायें हम, जीवन दिव्य बनाया री ! त्याग
मणिबहन की नेह गोद में (२) लेकर जन्म निराला;
कुल उज्वल कर छोटी वय में, धर्मशरण ली भय्या री !
आफ्रिका व सुदान पोर्ट में, (२) वणिक जाति में जाये;
मुनि विनोद के नामधारी हे ! त्याग भावना धारी री !
बीस वर्ष की नयी उम्र में, (२) दीक्षा भाव जगे थे;
वीराणी कुल में जन्म लिया था, आत्म जागरण जागा री
लालचन्दजी की गुरुवाणी, (२) सुनते विराग आया;
'यह संसार असार'–जान के, दीक्षित पथ स्वीकारा री
गुरु की सेवा करते निशदिन, (२) रहते सरल स्वभावी;
क्षमा धर्म को अखण्ड धरते, किसीको नहीं दुभाते री
मारवाड़ में संयम लेकर, (२) पास पूज्य गुरुवर के;
ढाई माह 'चरित्र' पाल कर, आत्म–सिद्धि वर पाया री
ढाई माह दीक्षा का पालन, (२) कर सबके मन भाये;
दिव्य मूर्ति के दर्शन करते, अनुपम हर्ष बढ़ाया री
श्रावण की द्वादशी शुक्ल पर, (२) बने देववर वासी;
स्वर्ग सिधारे दिव्य महात्मा, छोड़ा यह संसार री
शुद्ध भाव से संयम पाला, (२) संघ करे जयकार जी;
तव गुणगणका सुमिरन करते, हिय विदीर्ण बन जाय री
ऐसे जीवन में से थोड़े, (२) गुण–रत्नों को ले लें;
विरह अखरता हमें आपका, सुनते अन्तर भरते री
भृगु की अन्तिम विनति धरना, (२) देना दर्शन प्यारे;
गुरुवर ! अन्तिम आशिर्वाणी–"मोक्ष पुरी में जाएँ"–री

❁

(खण्ड मनहर)

आदर्श विनोदमुनि स्वर्ग-वास बसे री !
वियोग के दिन आज, सभी को भी रुलाया (२)

लघु वय में सँस्कार-दीपक प्रकाश धर,
बीराणी कुटुम्ब में री ! रोशनी वितान कर,
सद्गुण ग्राहक ने जीवन बदल पाया-वियोग०

द्रव्य युत ज्ञानदान के बहते झरने से,
मरुभूमि जैसे मानवों की तृषा छिपायी;
प्रेमवारि की वृष्टि से जीवन प्रफुल्ल किया-वियोग०

आतम सिद्धि के हेतु चले साधना पथ में,
बीराज्ञा के ब्यूगल से रण में सिधारे हैं
निपुण साहसवीर ! नाव को बचा लिया-वियोग०

रवि सम आपने प्रकाश धर पृथिवी में,
किरण हज़ार तेज रोशनी विकास कर;
गाढ अन्धकारमय मग को उजाल दिया-वियोग०

वीर वचनों से दया सिन्धुको बहा बहा,
अन्त में कराया शुभ दरशन गहना,
सुन्हला बोध दे के, परवास कर लिया-वियोग०

अन्तर पुकार देशविदेश के मानवों के,-
"मिले सही शान्ति गत आतमाको प्रभुसे;
शाश्वत सुख प्रसाद, आनन्द विहार हो;"
दूसरा प्रवास किया- वियोग०

ॐ शान्ति :



चमकने के पूर्व ही सितारा अस्त हो गया।

श्री विनोदमुनिजी चल बसे।

हा! हृदय दहलानेवाले ये कैसे समाचार हैं? समाचार पूरे पढ़ने के पूर्व ही हृदय आशंका से हिल गया। जोधपुर के पत्र में लिखा था कि–

"श्री विनोदमुनि श्रावण शुक्ल द्वादशी को"–इतना पढते ही हृदय में एक भय, एक आशंका जाग उठी। आगे क्या लिखा होगा? हिम्मत कर के पत्र का वाक्य पूरा पढ़ा तो पत्र हाथ में से छूट गया, मानो किसीने छाती पर ज़ोरदार प्रहार कर दिया हो। मुँह से एक 'उफ' निकल गई। पास बैठे हुए बोल उठे–'क्या हुआ? क्या लिखा है उस पत्र में?" किसीका बोलना नहीं सुहाता था। पुत्री आयी–"भोजन कर लीजिए"। "चली जा अभी भोजन नहीं करना है।" उठकर एकान्त में गया। आघात के असर को मिटाने के लिए ध्यान किया तो ओघरूप में लोगस्स चलता रहा। पर ध्यान में तो वही सौम्यमूर्ति–हँसता हुआ चेहरा– आने लगा। जब मैं खीचन से रवाना हुआ, तब उनके जो उद्‌गार निकलते थे, वे गूँजने लगे। आर्तभाव को हटाने के लिए ध्यान किया, परन्तु आर्तभाव हटा नहीं। रात को भी इन्हीं विचारों–संकल्पविकल्पों–ने निंद को भगा दिया था।

श्री विनोदमुनिजी की दीक्षा में, मैं शरीक़ नहीं था। उनकी दीक्षा के कई दिन बाद, मुझे संक्षिप्त समाचार मिले थे। श्री फ़ुसालालजी की दीक्षा के अवसर पर ही मैं उनके दर्शन कर सका, और उनसे दीक्षा की हक़ीकत जान सका। 'सम्यग्दर्शन' ५, जुलाई के अंक में उनकी दीक्षा के सम्बन्ध

में जो लेख प्रकाशित हुआ, वह उन्हीं से सुनी हुई हकीकत के आधार से लिखा था। वहाँ से लौटते समय भी मैंने उनसे बहुत सी बातें की थीं। आखिरी में उन्होंने मुझे कहा था कि, "डोशीजी! तमे मारा अम्मापियानुं काम कर्युं" बात यह हुई थी कि, श्री फुसालालजी की दीक्षा के उत्सव के समय, मैंने श्री विनोदमुनिजी को भी सम्बोधन करते हुए कहा था कि :—

'जिन उत्कृष्ट भावों से आप दीक्षित हुए हैं, उन्हें वर्धमान रखेंगे, तो आप तीसरे भव ही मोक्ष प्राप्त कर सकेंगे। भगवान्‌ महावीर द्वारा दीक्षित उन साधुओं को भी एक अपेक्षा से दुर्भागी मानना होगा, जो तैंतीस सागरोपम काल तक अनुत्तर विमान में—कर्मबन्धनों से—जकड़े रहेंगे, और आप उनसे पूर्व सिद्ध हो जाएँगे। आप होंगे सिद्ध, और वे रहेंगे साधक। आप होंगे आराध्य, और वे रहेंगे आराधक।

भगवान श्री नेमिनाथ के दीक्षा के समय त्रिखण्डाधिपति श्री कृष्णचन्द्रजी के शब्दों में भी आप को आशिर्वाद देता हूँ कि,

णाणेणं दंसणेणं च, चरित्तेण तवेणाय,
खंतीए मुत्तीए वड्ढमाणो भवाहि य ॥
(उत्तरा० २२)

इसी पर से उन्होंने उपर्युक्त शब्द कहे थे। और उपर्युक्त शिक्षा पर सतत ध्यान रखने के भाव बताये थे। मैंने भी निवेदन किया था कि, मैं इस चातुर्मास में पुनः दर्शन करूँगा। कौन जानता था कि ये अन्तिम दर्शन थे।

दुर्घटना कैसे हुई?

श्रावण शुक्ल द्वादशी के, दिन को चार बजे ही वे

'उच्चार' की बाधा निवारण करने के लिए जंगल जाने को उठे। तपस्विराज ने कहा—"अभी गर्मी पड़ रही है कुछ ठहरकर चलेंगे।" वे थोड़ी देर ठहर गये। प्रतिलेखनादि करने के बाद बोले कि, "मुझे हाजत विशेष है; अतएव मैं जाता हूँ; जल्दी ही लौट आऊँगा।" सदैव तो सभी सन्त साथ ही जाते थे, किन्तु भवितव्यतावश उस दिन वे अकेले ही गए। वापस लौटते समय रेल्वे लाईन को गायों का एक टोला पार कर रहा था। उधर से ट्रेन आ रही थी। मुनिजी ने देखा—यदि गायें नहीं बचीं, तो ट्रेन से कुचल जाएँगी। हत्या की कल्पना से मुनिजी का हृदय थर्रा गया। गौओं की अनुकम्पा से प्रेरित होकर काल के समान राक्षसी इंजिन से गौओं को बचाने का उन्हों ने साहस किया। गायें तो बचकर लाईन पार हो गईं, किन्तु गायों को लाईन से हटाते समय, मुनिजी का रजोहरण लाईन पर गिर गया। उधर कालस्वरूप वह इंजिन वेग के साथ निकटतम हो चुका था, और आगे बढ़ ही रहा था। मुनिजी रजोहरण उठाने को झुके, और इंजिन की झपट में आ गये। प्राणहारक आघात लगा। धराशायी हो गये। शरीर से रक्त का प्रवाह फूट पड़ा, और कुछ देर बाद प्राणान्त हो गया। फलोदी व खीचन में यह खबर फैलते ही हाहाकार मच गया। सभी लोग कहते थे—"गौरक्षण में मुनिजीने अपने प्राण झोंक दिये।" उनके चेहरे पर शान्ति विराज रही थी। चेहरे को देखने पर यही लगता था कि उन्होंने समताभाव धारण कर शान्ति से देह छोड़ी। इसीसे चेहरे पर किसी प्रकार की विकृति नहीं आई। इस दुर्घटना की खबर, राजकोट में, दिवंगत के पिताको दी गई, जो प्रातःकाल पहुँची। वे स्पेशियल एरोप्लेन से आना चाहते थे, और टेलीफोन से दाहसंस्कार रोकने के समा-

चार दिये; किन्तु इसके पूर्व ही (लगभग सोलह घण्टों के पहले) संस्कार हो चुका था। फिर दिवंगत के पिताजी-माताजी–आदि ट्रेन से पहुँचे। उन के शोक का पार नहीं था। दर्शक यह दृश्य देखकर स्वयं शोकाकुल बन गए थे। मुनिवृन्द आर्त ध्यान को दूर करने के लिए सतत प्रयत्न करते थे। किन्तु उस समय तो उनसे भी नहीं रहा गया। दो–ढाई महीने में सभी सन्त क्षीरनीरवत् घुलमिल गए थे। ज्ञानध्यान और संयम में आनन्द-पूर्वक समय बीत रहा था। परमार्थ के उस निःस्वार्थ साथी के वियोग से वे भी दुःखी थे।

गजसुकुमाल की माता, अपने पुत्र का दीक्षा उत्सव तो कर सकी थी, पर दिवंगत विनोदमुनि की ममतामयी माता, न तो पुत्र का दीक्षा महोत्सव कर सकीं, और न दीक्षित पुत्र के दर्शन ही कर सकीं, उनके दुःख का तो अनुमान ही किया जा सकता है। मातापिता की धुमधामपूर्वक दीक्षा देने की भावना भी सफल न हो सकी, और दर्शन भी नहीं हो सके। मातापिता की भावना थी कि, विनोदमुनि को उनके गुरुदेव के साथ चातुर्मास के बाद काठियावाड़ ले जायँ, और अगला चातुर्मास वहीं कराएँ। ये सब बातें उनके मन में ही रह गईं। भवितव्यता को कौन टाल सकता है? ज्ञान के अवलम्बन से आत्मा को आर्तध्यान से हटाकर धर्मध्यान में लगाना ही हितकर है।

'सम्यग्दर्शन' ता. ५–९–'५७

सम्पादक : रतनलाल डोशी

*

समाचार विवरण।

शोकजनक घटना।

आशा में निराशा।

'तरुण जैन' के ता. २२ जुलाई के अंक ४२ के पृष्ठ ३ पर 'आज भी ऐसे महान त्यागी हैं।'—इस शीर्षक के नीचे खीचन (जोधपुर) गॉव में श्री विनोदकुमारजी की भागवती दीक्षा के समाचार दिये थे। उन मुनि का यकायक रेल के इंजिन से टकरा जाने से स्वर्गवास हो गया। ऐसे समाचार, पत्र छपते छपते मिले हैं।

'तरुण जैन' ता. १२–८–'५७

गाय के प्राण बचाने में जैन मुनि की आहुति।

(हमारे संवाददाता द्वारा।)

फलोदी (डाक से), ७ अगस्त की शाम को—उस समय—नगर में कुहराम मच गया, जब कि फलोदी से पोकरण जानेवाली रेलगाड़ी के इंजिन से एक युवा जैनमुनि का प्राणान्त हो गया। कहा जाता है कि उक्त जैन मुनि गाय को बचाने का प्रयास करते हुए अपना प्राण गँवा बैठे।

स्मरण रहे, इन जैन मुनिने करीब ढाई माह पूर्व ही राजकोट से खींचन पहुँच कर दीक्षा ली थी। दीक्षा लेने से पूर्व युवा मुनि, विदेशों का भ्रमण कर चुके थे, और वे एक करोड़पति घराने से सम्बन्धित थे।

'हिन्दुस्तान' ता. १३–८–'५८



फलोदी रेल की टक्कर से जैन मुनि का प्राणान्त।

फलोदी (डाक से), गत बुधवार को फलोदी से पोकरण

जानेवाली रेल की चपेट में आ जाने से एक जैन मुनि का प्राणान्त हो गया। बताया जाता है कि, जैन मुनि ने हाल ही में दीक्षा ली थी, और आप युवावस्था में ही थे। आप एक गाय को बचाने का यत्न कर रहे थे, और उस के प्राणों की रक्षा में खुद के प्राण गँवा बैठे।

'राष्ट्रदूत' ता. १४-८-'५७

*

गाय की रक्षा के लिए युवान जैन मुनि का आत्मसमर्पण।

फलोदी, ता. १६। चार दिनों के पहले यहाँ एक करुण दुर्घटना हो गई। एक इंजिन आता था, और गाय पटरियों पर चरती थी। नज़दीक में से एक युवान जैन मुनिराज जा रहे थे। इस दृश्य को देखकर वे गाय को बचाने के लिए इजिन के आगे कूद पड़े। गाय को तो वे बचा पाये, किन्तु स्वयं इंजिन की झपट में आकर कालधर्म को प्राप्त कर गये।

यह युवान जैन मुनिराज करोड़पति खानदान घराने से सम्बन्धित थे, और अभी तीन मास पहले ही दीक्षा का अंगीकार किया था। उनके कालधर्म के समाचारने जैनों में गहरे शोक की भावना फैली थी। उनके दर्शन के लिए हज़ारों जैन-जैनेतर लोग उमड़े थे।

'जनशक्ति' ता. १७-८-'५७

*

आत्मविनोदी विनोदमुनि का देहोत्सर्ग।

राजकोट के धर्म-प्रेमी समाजसेवी श्री दुर्लभजीभाई शामजीभाई वीराणी के सांसारिक पुत्र, धर्मनिष्ठ श्री विनोदभाईने खीचन में स्वेच्छापूर्वक दीक्षा लेने के समाचार वर्तमानपत्रों

में पढ़े थे, तब एक धनी के पुत्र की वैराग्यभावना और भागवती दीक्षा अंगीकार कर मानव जीवन को धन्य और सफल बनाने की उत्कृष्ट भावना जान कर, उन्हें मिलने की दर्शन करने की उत्कृष्ट इच्छा हुई थी। खीचन (फलोदी) जानेका पुरोगम भी निश्चित कर दिया था। दरम्यान स्थंडिल जाते हुए, रास्ते में गायों को बचाने के लिए जाते हुए, रेल्वे इंजिन की झड़प में आकर विनश्वर देहका उत्सर्ग करने का यकायक समाचार सुनते ही दिलको एक धक्का लगा। साथ ही साथ देह की क्षणभंगुरता और श्री विनोदमुनि की आत्म-विनोद की उत्कृष्ट वैराग्यभावना स्मृतिपट पर अंकित हो उठी :—

१ देह नाशशील है, आत्मा अमर है। अतः देह और आत्मा का भेदज्ञान–विवेक ज्ञान–ही 'सम्यग्दर्शन' कहा जाता है।

२ आत्मा को शुद्ध, बुद्ध और मुक्त करने के लिए विरक्ति भाव को बढाना चाहिए।

३ विरक्ति–भाव और विवेकज्ञान का समन्वय करना ज़रूरी है। यही भागवती दीक्षा का अंगीकार है।

४ आत्मज्ञान की शिक्षा और भागवती दीक्षा का अंगीकार कर, अहिंसा, संयम और तप की साधना के ज़रिये जीवन को उज्ज्वल बनाना चाहिए।

५ अहिंसा, संयम, तप और त्याग के द्वारा आत्मा की आराधना करनी चाहिए। विराधना का त्याग करना चाहिए, और ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य रूपी रत्नत्रय की सम्यक् आराधना से मोक्षमार्ग की ओर गति करनी चाहिए।

जीवन सिद्धि के ये पाँच सोपान हैं। इन पाँचों के ऊपर चढ़ना सुगम नहीं है; पर समता, सरलता, सहिष्णुता और

शमवृत्ति के द्वारा उस कष्टसाध्य मार्ग में भी चला जा सकता है।

विनोदमुनि की आत्मा सचमुच ही वैराग्यशील और आत्म-विनोदिनी थी। यही कारण है कि बचपन से ही उनके जीवन में धार्मिक संस्कार उतरे थे, और धर्मजीवन के मार्ग में प्रयाण करते हुए सांसारिक विभवविलास या प्रलोभन उन्हें नहीं लुभा सके।

सोही उज्जुभूयस्स

उनकी आत्मा सरल होने से, उन्होंने धर्मशिक्षा, भागवती दीक्षा और वैराग्यभावना के द्वारा आत्मशुद्धि की साधना की, और अहिंसा के रक्षण में उन्होंने देह का उत्सर्ग कर, अपनी आत्मविनोदिता का परिचय दिया। आत्मविनोदी की अमर आत्मा अपूर्व शान्ति प्राप्त करे, और उनके जीवन में से विरक्तिभाव और विवेकज्ञान का आदर्श हमें प्राप्त हो यही आन्तरिक इच्छा और प्रार्थना है।

—शान्तिलाल व. शेठ

'जैनप्रकाश' ता. २२-८-'५७



गौरक्षा के लिए प्राणोंकी आहुति।

स्वयंदीक्षित श्री विनोदमुनि का रेलकी टक्कर से निधन।

श्रावण शुक्ला १२, बुधवार, फलोदी (मारवाड़) वर्ध० श्रमण-संघीय तप मुनि श्री लालचन्दजी महाराज की सेवा में स्थित स्वयंदीक्षित श्री विनोदमुनिजी का आज सायं साढ़े पाँच बजे, अकस्मात् रेलकी टक्कर से दुःखद अवसान हो गया। समाचार पाते ही अन्य मुनिराज, महासतीजी एवं सारा नगर घटनास्थल पर पहुँचा। शव के वक्षस्थल से अपार खून बह रहा था, और

दोनों पैरों पर गहरी चोटें आई थीं। इस अत्यन्त शोकप्रद घटना को देखकर, प्रत्येक व्यक्ति नितान्त विह्वल व शिथिल बन गया। ज्ञात हुआ कि मुनि जी गायों के रक्षण के लिए, उन्हें पटरियों से हटाकर लौटे ही थे कि रजोहरण गिर गया। उसे उठाते उठाते यह विषादजनक प्रसंग बन गया। अश्रुपूर्ण नेत्र व संतप्त हृदय लिए फलोदी की जैन और जैनेतर जनताने व खीचन के जैन समाजने दूसरे दिन प्रातःकाल में १० बजे दाह संस्कार व १२ बजे निर्वाण काय-उत्सर्ग किया। तीसरे दिन उपाश्रय में मध्याह्न को ढाई से पाँच बजे तक दिवंगत के लिए श्रद्धांजलि देने को सभा हुई। उसमें जन साधारण ने बड़ी संख्या में उपस्थित होकर मुनिजी के प्रति अपने हार्दिक शोकोद्गार व्यक्त किए, एवं शासनदेव से सहृदय प्रार्थना की कि वे शोकसंतप्त मानस को धैर्य दें; और दिवंगत मुनिजी को शान्तिप्रदान करें। अत्र विराजित मुनिराजों ने भव्य संस्मरणों एवं आदर्श गुणों पर गीले कण्ठ से प्रकाश डालते हुए मुनिजी के प्रति व्यथित हृदय से शोकांजलि अर्पित की।

दिवंगत मुनि जी, राजकोट निवासी कोट्यधिपति श्रीमान् दुर्लभजी शामजी वीराणी के चौथे सर्वाधिक स्नेहपात्र पुत्र थे। बाल्यकाल से ही मुनिजी का हृदय वैराग्यविकसित, व जीवन प्रायः सन्त-सेवा-संलग्न था। छह वर्षों तक मुनि जी भागवती दीक्षा के लिए सांसारिक पिताजी से अनुनय-विनय कर, अनुज्ञा प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहे। जब मोहवशात् व स्नेहवशात् पिताजीने आज्ञा प्रदान न की, तब मुनिजीने खीचन मारवाड़ पधारकर, अत्यन्त साहस के साथ स्वयं दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा पर्याय पालने अभी ढाई मास ही बीते थे कि यह आकस्मिक निधन हो गया।

अति वैभवसम्पन्न होने के कारण मुनि जी बहुत ही सुकुमार

एवं सुखोचित थे; तथापि जीवन में विनय, नम्रता, आज्ञापालकता व कष्टसहिष्णुता फूट फूट कर समायी हुई थी। सर्वदा ही मुख पर प्रसन्नतायुत हास्य छाया रहता था; व मुख से अमृतमधुर शब्द निकलते थे। क्या विरत्, क्या दीक्षित–दोनों अवस्थाओं में मुनिजी ने 'असंखयं जीविय मा पमायए' को जीवनसूत्र बना रखा था। प्रारंभिक चिह्नों से ही प्रकट था कि, मुनिजी निकट भविष्य में कुल के सच्चे दीपक व शासन के प्रभावक पुरुष होंगे; परन्तु समाज का अल्प पुण्य है कि, ऐसी नवनिधि शीघ्र ही समाप्त हो गई।

ऐसे शोचनीय अकस्मात् बनाव के उपरान्त भी मुनिजी की मुखमुद्रा अतीव सौम्य थी, तथा शव सोलह घण्टों तक रहने पर भी गन्धहीन था। हृदय इस विश्वास के लिए प्रेरित करता है कि ये चिह्न व अकस्मात् घटना का हेतु मुनिजी की समाधिमृत्यु व जीवनसफलता का द्योतक है। शासनदेव से प्रार्थना है कि ऐसी पवित्रात्मा जहाँ कहीं विराजमान हों, हमारी भावभीगी कोटि कोटि वन्दना स्वीकार करें, व अपनी आत्मप्रगति के साथ शासनसहायक बनें।

'स्था. जैन' ता. २०–८–'५७
'तरुण जैन' ता. २६–८–'५७
'जैन प्रकाश' ता. १–९–'५७



विरल विभूति विनोदमुनि।

वैराग्यमूर्ति श्री विनोदमुनि ने अत्यल्प काल में ही जैन समाज में विशेष ख्याति प्राप्त कर ली थी। इतिहास में सुना करते थे कि, अनेक सन्त, जन्मजात वैरागी के रूप में इस धराधाम पर अवतरित हुए, और निमित्त मिलते ही उन्होंने

गृहत्याग कर संयम एवं त्याग का जीवन अंगीकार कर लिया। स्वर्गीय श्री विनोदमुनिने उस इतिहास की पुनरावृत्ति की थी।

वि. सं. १९९२ में उनका जन्म एक कोटयधीश परिवार में हुआ। जैन समाज में श्री दुर्लभजी शामजी वीराणी, अपनी दानवीरता के लिए प्रसिद्ध हैं। वह आपके ही सुपुत्र थे। सौ. मणिवहन की रत्नकुक्षि से आपका जन्म हुआ था। आपने मैट्रिक तक विद्याभ्यास किया, और विलायत की यात्रा भी कर आए; पर यह सब करते हुए भी आप संसार में कभी आसक्त नहीं हुए। करोडों की सम्पत्ति आपको आकर्षित न कर सकी। पूर्वजन्म के वैराग्य के जो प्रबल संस्कार उनकी आत्मा में निहित थे, वे बराबर आपको त्याग और संयम की प्रेरणा देते रहे।

इन संस्कारों की प्रेरणा से उनका जीवन, गृहस्थयोगी का सा बन गया था। श्री विनोदमुनि के पिताजी ने स्वयं लिखा है—"वे बचपन से ही त्याग-वैराग्यमय संस्कारों में रंगे हुए थे। पिछले पाँच वर्षों से वे ज्ञान, ध्यान और सन्तसमागम में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। हमारे सारे कुटुम्ब में इसका पूर्ण सहयोग था। शास्त्रों का अधिक अभ्यास कर लेने के बाद दीक्षा देने की हमने सम्मति भी दे दी थी; परन्तु उनके अन्तर में वैराग्य की उत्कृष्ट भावना शीघ्रता से जाग्रत हुई, और वे राजस्थान के अन्तर्गत खीचन ग्राम में जाकर ता. २६-५-'५७ को स्वयमेव दीक्षांगीकार कर के तपस्वी मुनिजी श्री लालचन्दजी महाराज तथा उनके शिष्य मुनियों के अन्तेवासी होकर रहने लगे। इस में उनको तथा हमको सन्तोष था।"

इस भौतिक तथा नास्तिकता के युग में धन्य हैं ऐसे धर्मप्रिय पिता, और अतिशय धन्य हैं ऐसे पुत्र! उस चढ़ती

जवानी में, जब मनुष्य को उन्माद उत्पन्न होता है, और मनुष्य विषय भोगों की चंचल तरंगों में बहता फिरता है, श्री विनोदमुनि संयम और त्याग के बीहड़ पन्थ पर चल पड़े।

खेद है कि श्री विनोदमुनि को दीक्षित हुए पूरे ढाई महीने भी न हो पाये थे कि रेल के इंजिन की झपट में आ जाने के कारण अकस्मात् ही आपका स्वर्गवास हो गया।

यह घटना अत्यन्त करुण है। हम इस पर गंभीरता से विचार करते हैं, तो अदृश्य शक्ति की प्रचंडता बरबस स्वीकार करनी पड़ती है। कौन कह सकता है कि अल्प आयु लेकर आये विनोदमुनि को अलक्ष्य शक्तिने ही अल्पकाल में आत्मकल्याण करने की प्रेरणा नहीं दी थी? कुछ भी हो, ऐसी विरल और उत्कृष्ट विभूति को खो कर संघ दरिद्र हो गया। वीराणी परिवार को सान्त्वना देने के लिए हमारे पास शब्द नहीं हैं। हम तो यही कह सकते हैं कि श्री विनोदमुनि अखिल जैन संघ के थे उन के वियोग से समस्त जैन संघ दुःखित और आहत है।

सम्पादक,
—'जैन प्रकाश' ता. १–९–'५७

*

जैन सिद्धान्तों में ऐसे बहुत से दृष्टान्त मिलते हैं कि, मरणान्तिक उपसर्ग (मनुष्यकृत, देवकृत, पशुकृत या आकस्मिक) साधु को आ मिलते हैं। उन्हे समभाव से जानने से, शुद्ध आत्मभाव में रहने से या तो मोक्ष होता है, या ऊँचा देव बना जा सकता है। उपसर्ग का कारण तो सत्तास्थित कर्मों का उदय ही समझना चाहिए। वह मुनिजी श्री विनोदकुमार को हुआ। उसका समभावसे वेदन करने से अवश्य ही आत्म- हो सकता है। उनके मातापिता के लिए गौरव का

स्थान यही है कि, उन को एक सुपुत्र प्राप्त हुआ, जो आत्म-कल्याण कर गया। अपार ऋद्धि-सिद्धि की ओर उसने दृष्टिपात तक नहीं किया। धन्य है ऐसी आत्मा को। वे इस प्रकार के सन्तोष का अनुभव कर अब यदि शेष ज़िंदगी को धर्मध्यान में बिताएँ, तो उनका कल्याण हो सकता है।

—डॉ. एन. के. गान्धी,
'रत्न ज्योत', ता. ५-९-'५७

श्री विनोदकुमार मुनि का अकस्मात् से अवसान।
(उन के स्वर्गवास के सम्बन्ध में श्री दुर्लभजी भाई का हिन्दी में निवेदन।)

श्री विनोदकुमार मुनि संसार-पक्ष की दृष्टि से मेरे सुपुत्र थे। वे बचपन से ही त्याग-वैराग्यमय संस्कारों में रँगे हुए थे। पिछले पाँच वर्षों में वे ज्ञान, ध्यान और सन्तसमागम में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। हमारे सारे कुटुम्ब का इस में पूर्ण सहयोग था। शास्त्रों का अधिक अध्ययन कर लेने के बाद दीक्षा देने की हमने सम्मति भी दे दी थी; परन्तु उनके अन्तर में वैराग्य की उत्कृष्ट भावना शीघ्रता से जाग्रत हुई, और वे राजस्थानान्तर्गत खीचन ग्राम में जाकर, ता. २६-५-'५७ को स्वयमेव दीक्षा अंगीकार कर के, तपस्वी मुनिजी लालचन्दजी महाराजजी तथा उनके शिष्य मुनियों के अन्तेवासी होकर रहने लगे। इस में उनको तथा हमको सन्तोष था। एक मास खीचन में विराजकर चातुर्मास के लिए सब मुनि फलोदी पधारे, जो कि वहाँ से चार मील दूर है।

ता. ७-८-'५८, सायंकाल पौने छह बजे, वे शौच निवारणार्थ जंगल में गए थे। उस वक्त कुछ गायें रेल की पटरी के पास चर रही थीं। उनको वे दूर करने लगे। गायें हट गईं,

मगर रजोहरण गिर गया। उसको लेने में स्वयं इंजिन की झपट में आ गए, और उसी वक्त प्राणान्त हो गया।

स्वर्गीय विनोदकुमार मुनि का धार्मिक जीवन अनुकरणीय था। ऐसे उच्च जीवन से शिक्षा ग्रहण कर हम भी अपना जीवन धर्मपरायण बनाएँ, यही अभ्यर्थना।

'रत्न ज्योत' ता. ५-९-'५७ धर्माभिलाषी,

दुर्लभजी शामजीभाई वीराणी।



आज भी ऐसे महान त्यागी हैं।

इस अंक में श्री विनोदमुनि के आकस्मिक अवसान के समाचार, हिन्दी विभाग में दिए गए हैं। उनका संक्षिप्त परिचय-'सम्यग्दर्शन' में आया था। उसे हम अक्षरशः यहाँ पेश करते हैं।

जोधपुर ज़िले के खीचन गाँव के उपाश्रय में मुनिगण प्रातःचर्या में लगे हुए थे। उतने में एक अनजान युवक उपाश्रय में प्रवेश करता है, और मुनिवरों को वन्दना-नमस्कारादि करके बाहर निकलता है। पाँच-सात मिनटों के बाद ही वह साधु के वेश में पुनः मुनिवरों के सामने उपस्थित होकर उठ बैठ कर के वन्दना-नमस्कारादि करता है, और स्वयं स्वमुख से उच्चारण करता है कि, 'करेमि भन्ते सामाइयं सव्व सावज्जजोगं पच्चक्खामि जावजीवाए तिविहं तिविहेणं ।'

युवक की इस प्रतिज्ञा को सुनकर सन्त सब आश्चर्यमुग्ध होते हैं, और पूछते हैं कि, "श्रावकजी, यह क्या कर रहे हैं?" युवक नम्रतापूर्वक अपनी भाषा में जवाब देता है कि, "गुरुदेव! अब मैं श्रावक नहीं हूँ, अभी से मैं साधु हो गया हूँ। मेरे मन के अभिलाष पूर्ण हुए। मुझे आपके चरणों में स्थान दीजिए।"

मुनिवरने समझाते हुए कहा—"भाई! ऐसा कैसे बन सकता

है? तुम्हारे मातापिता की आज्ञा प्राप्त किए विना हम तुम्हारा स्वीकार कैसे कर सकते है? पहले सूचना दी होती और तुम्हारे मातापिता की अनुमति लेकर नियमपूर्वक दीक्षा लेते तब विचार करने की ज़रूरत नहीं पड़ती। हमें पता नहीं था कि तुम अभी ही आनेवाले हो, और हम से दीक्षा लोगे। तुमने यकायक ही यह साहस कर लिया है।"

तब युवक ने कहा—"गुरुदेव यह दुःसाहस नहीं है। भावावेश में अविचारी डग नहीं रखा है। समझ–बूझ कर और लम्बे अरसे की विचारणा के बाद ही गृहत्याग किया है। मातापिता तो प्रतिकूल नहीं हैं, पर मेरे ऊपर का उनका मोह बाधा डालता है, फिर क्या किया जाय?"

श्री विनोदकुमार, राजकोट (सौराष्ट्र) निवासी प्रतिष्ठित श्रीमान् सेठ दुर्लभजी भाई वीराणी के चौथे पुत्र हैं। उम्र उनकी वीस साल के अन्दर होगी। पिछले तीन चार वर्षों से उनकी धर्मरुचि वृद्धिगत हुई। डॉ. एन. के. गान्धी के सहवास में उनकी ज्ञानचेतना और चारित्र्यरुचि में अभिवृद्धि हुई। यों तो उन्होंने कुछ विदेशभ्रमण भी किया है, किन्तु सन्तसमागम और ज्ञानगोष्ठी के लिए स्वदेश के भिन्न भिन्न प्रान्तों में गये हुए हैं। गत वर्ष सैलाना में भी आए थे। तब से मैं श्री विनोदकुमार (आज के श्री विनोदमुनि जी) को पहचानता हूँ। मैंने मुनिवर से पूछा—"महाराज जी! आप यों गुप्तता से साधु बन जायें. यह तो आश्चर्य की बात है।" तब उन्होंने उत्तर दिया था—"नहीं, आश्चर्य की कोई बात नहीं! आप जानते हैं कि, मैं संसार छोड़कर 'अनगार' बनने के लिए प्रयत्नशील ही था। मैंने गत वर्ष आपसे कहा भी था। मातापिता की अनुमति प्राप्त करने के लिए अनेक प्रयत्न किए, पर पूर्ण सफलता प्राप्त न हो सकी। वे समझ चुके थे कि,

विनोद गृहवास में रहनेवाला नहीं है। अतः मेरे दीक्षा लेने के विचार से वे सहमत जरूर थे; फिर भी उनके हृदय में यह आशा बनी हुई थी कि, शायद वह मेरी इच्छा भावावेशमय होगी। समय बीतने पर वह आवेश शान्त अगर हो जाय, तो हमारा प्यारा विनोद हमारे पास ही रहे। अतः मेरी बात को वे आगे ढकेलते रहे। मैंने सोचा कि अब मुझे ही अपने कर्तव्यपथ पर चढ़ जाना चाहिए। प्रव्रज्या तो मेरे ही अंगीकार से होगी। माता-पिता की अनुमति के साथ प्रव्रज्या का कोई सम्बन्ध नहीं है। मैंने विचार किया कि, किसी को समाचार दिये बिना ही घर में से चला जाना चाहिए। वही मेरे लिए श्रेयस्कर है। अगर ऐसा न हुआ, तो विघ्न उपस्थित होंगे। मैंने तपस्विराज श्री लालचन्दजी महाराज के, बम्बई में दर्शन किये थे। उन सन्तों के प्रति मेरी भक्ति थी ही। उनके दर्शन से मेरी भक्ति बलवती बनी। यह मुझे मालूम पड़ा कि, तपस्विराज खीचन पधारते हैं। बस, मैंने विचार कर लिया कि, यह उत्तम अवसर है। क्षेत्र भी यहां से दूर है, अतः किसी भी प्रकार की धमाल के बिना मेरे मनोरथ सिद्ध होंगे।

मैं यकायक घर से निकल पड़ा। गाड़ी तैयार खड़ी थी। गाड़ी खुलने के समय ही मैं स्टेशन पर पहुँचा, ताकि किसी को मालूम न पड़ जाय। वहाँ हर समय की तरह फर्स्ट क्लास मैं न बैठा मेहसाना उतरकर वेइटिंग रूम में हजाम को बुलाकर मुंडन करा लिया। मैंने वहाँ पात्र और रजोहरण की तलाश की, किन्तु मुझे वे प्राप्त नहीं हो सके। विचार तो मेरा यह था कि, मैं साधुवेश से ही खीचन गाँव में प्रवेश करूँ; किन्तु फिर विचार किया कि, कदाचित् लालचन्दजी महाराज खीचन न पहुँचे हों. और खीचन में विराजित अन्य मुनिवर मुझ से अज्ञात होने से स्वीकार न करें तो? इस

विचार से मैंने खीचन में प्रवेश करने के पहले सन्तों के दर्शन किए, और फिर मुनिवेश धारण कर मैं स्वयं दीक्षित बन गया। मैं जानता था कि मेरे मातापिता की अनुमति के अतिरिक्त मुनिराज मुझे दीक्षा नहीं देंगे; अतः मैंने किसी से अनुरोध नहीं किया। मैं तो स्वयमेव दीक्षित बन गया। बस, यही घटना है मेरे 'अणगार' होने की। प्रव्रजित होने से पहले मेरे शरीर में कुछ अशाता भी रहती थी, पर अब मैं पूर्ण निरोगिता एवं प्रसन्नता अनुभव करता हूँ।

—'स्थानकवासी जैन' ता. २०–८–'५७

—'तरुण जैन', ता. २२–७–'५७

दुःखद दुर्घटना।

सन् १९५६ अगस्त ७ का दिन, फलोदी नगर की अपेक्षा जैनसमाज के लिए, और विशेषरूप से अखिल भारतीय स्थानकवासी समाज के लिए महान विपैला, क्रूर और घातक साबीत होता है। उपर्युक्त–कथित–दिन के करीब छह बजे, हमारे यहाँ–फलोदी में–एक अत्यन्त दर्दनाक घटना घटी। फलोदी में इस साल, श्रद्धेय पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज का चातुर्मास ठाणा ५ से हुआ है।

महाराज जी अपने तीनों पुत्रशिष्य–शान्त सरल स्वभावी आ. ब्र. मुनिजी मान मुनिजी, कान्हमुनिजी, पार्श्वमुनिजी और नवदीक्षित परमविनीत मुनि श्री विनोदमुनिजी के साथ सुखसमाधि के साथ विराजते थे। फलोदी नगर, इस मुनिमण्डल को प्राप्त कर के आनन्द से फूला न समाता था। चारों ओर हर्ष ही हर्ष दिखाई देता था। उत्साहित नगरनिवासियों के जयनाद और 'जैमत्व जिन्दाबाद' के नारों से गगनमण्डल गूँजता रहता था, लेकिन कुदरत को यह सब मंजूर न था। रंग में भंग हो ही गया, और देखते ही देखते हमारे परमविनीत और अत्यन्त

मधुरस्वभाववाले मुनि श्री विनोदजी काल के कराल पंजे में आ गए। फलोदी से पोकरण जानेवाली शाम की ट्रेन से हमारे इस विरक्त साधक की टक्कर हो गई। घटना स्थल के समीप मौजूद दो-तीन व्यक्तियों के कहने के मुताबिक मुनिजी दो बूढ़ी और अशक्त गायों को, जो ट्रेन की लाइन के बीच खड़ी थीं, हटाने का प्रयत्न करने में लगे थे। ट्रेन काफी नजदीक में पहुँच रही थी। और उन दोनों गायों की मृत्यु अवश्यंभावी थी, किन्तु अनु-कम्पा के अवतार उन मुनिने अपने प्राणों की बाजी लगाकर उन दोनों गायों को बचाया अवश्य ही, लेकिन करुणा और अनुकम्पा की मूर्ति मुनि स्वयं का बलिदान हो गया। ड्राइवर की लापरवाही और 'डिंकर' अवस्था में होने की वजह से ट्रेन न रुक सकी, और यकायक मुनिजी ट्रेन की चपेट में आकर कालकवलित हो गये। खैर, जैसी हो भवितव्यता' के अनुसार मुनिजी का देहान्त हो गया, पर उनके इस तरह आकस्मिक और असामयिक स्वर्गवासने समस्त फलोदी में विशाल शोक और असहनीय दुःखद प्रसंग का सूत्रपात कर दिया। सिर्फ अनुमान ही नहीं, हमें यह पूर्ण विश्वास और दृढ आशा है कि मुनिजी अवश्य ही ऊर्ध्वगतिगामी हुए होंगे, और भवान्तर में ही शीघ्र ही जन्म-जरा-मृत्यु के कठिनतम तापत्रय को जीत कर पंचमगति प्राप्त करेंगे। गत ८ ता. को मुनिजी के स्वर्गस्थ होने के शोक में एक विशाल सार्वजनिक सभा, स्थानीय धर्मबाड़ा में बुलाई गई। उसमें दो प्रस्ताव पास किए गए एक में मुनिजी की आत्मशान्ति और शुभगतिगमन के लिए ईश्वर से प्रार्थना और दूसरे में मुनिजी के मातापिता और अन्य परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रकट की गई। वे दोनों प्रस्ताव सर्व-सम्मति से तय हो गये। मुनिजी के पिताजी श्री दुर्लभजी भाई राजकोटवालों को एक विशेष पत्र यहाँ के समाजने दिया

है, जिसमें गहरी समवेदना प्रकट करते हुए, उन्हें धैर्य धारण करने के लिए निवेदन किया गया है।

—मिलापचन्द्र ढड्ढा।

*

गाया : उजलवाव स्टेशन,
गढाली ता. २६–८–'५८

श्रीमान् धर्मप्रेमी श्री दुर्लभजीभाई शामजीभाई की सेवामें,

आपकी ओरसे बालब्रह्मचारी श्री विनोदमुनि की स्मृति का ग्रन्थ भेंट मिला। धन्यवाद।

पुस्तक को पढकर मेरे अन्तरमें उठे हुए विचारों को आप के समक्ष पेश करता हूँ।

१ इन श्री विनोदमुनि का तो इसी अवतार में मोक्ष हो गया है। उन्हें देवलोक की ही प्राप्ति मानने की जरूरत नहीं है, क्यों कि भगवान महावीर प्रभु श्री गौतम स्वामी से कहते हैं कि 'थयथुई मंगल' के पाठ की आराधना करनेवाला, उसी भव में सिद्ध-गति को प्राप्त करता है।

२ श्री गौतमस्वामी से महावीर प्रभु और भी कहते हैं कि, धर्मश्रद्धावान् जीवको कालधर्म के उदय में भी साधुत्व प्राप्त होने से मोक्षफल की प्राप्ति होती है।

३ श्री विनोदमुनिने संसारावस्था में मनोमन्थन के तीन उपाय सिद्ध किए हैं।

४ श्री विनोदमुनि दया के सागर थे। उन्होंने अपने पिताको भी मीलों का व्यापार के लिए बोधप्रद पत्र लिखा था। ऐसे आत्मार्थी का प्रथम भव में ही मोक्ष होना है, ऐसा शास्त्र कहते हैं।

५ श्री विनोदमुनि जन्म से ही बालब्रह्मचारी रहे हैं। अनार्य देशों में वे घूमे थे, एवं कश्मीर जैसे बड़े देश में, मुनियों को भी प्रलोभनकारी दृश्यों में वे लुभा नहीं गए। अपने धर्म का रक्षण कर साधु-जीवन से ही उन्होंने देशाटन किया। उस आत्मा को इसी भव में मोक्ष हो सकता है।

६ श्री विनोदकुमार मुनिने द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे, जिन आगमों को सिद्ध किया है। आज के इस विषम कलि काल में यह सिद्धि बड़ी दुष्कर है। वे मोक्षार्थी ही थे, और अतएव जिन आगमों की सिद्धि वे कर पाये हैं। इस प्रमाण से भी वे मोक्ष के अधिकारी साबीत होते हैं।

७ देवलोक तो राजवैभव से भी अधिक सुखों और मौज़मज़ाहों की प्राप्ति का स्थान है। ऐसे ब्रह्मचारी वहाँ रह ही नहीं सकते। क्यों कि जन्म से ही धर्म और वैराग्य को साथ लेकर उन्होंने अवतार धारण किया था। उनके जीवन को पढ़कर हम इस तत्त्व को निकाल सकते हैं।

८ अन्त में श्री विनोदमुनि को मैं लक्षावधि नमस्कार-वन्दनाएँ करता हूँ। प्रभु उनकी अमर आत्मा को पूर्ण शान्ति में रखे ऐसी प्रार्थना करता हूँ।

—शाह पानाचन्द ताराचन्द

*

बालाणं अकामं तु, मरणं असइं भवे।
पण्डियाणं सकामं तु, उक्कोसेण सइं भवे॥

भावार्थ- मूर्खों का अकाम मरण तो अनेक बार होता है किन्तु पंडितों का सकाम मरण तो उत्कर्ष से एक ही बार होता है।

प्रकरण २२

लेखक को सूचना और आगम प्रवचनों की प्रभावना।

अतिमानपुरःसर लेखक महाभाग्यशाली वीराणी कुटुम्ब को सूचना देता है कि :-

स्वधर्मी बन्धुओ !

इस ग्रन्थ की मैंने सम्पूर्णतः न्याय के घर में प्रवेश करके ही रचना की है। इस ग्रन्थ के प्रमाण में आपके संसारव्यवहार की आपकी घटनाएँ, मैंने आप से लेखित रूप में लेकर, और उनकी सत्यता के विषय में, अपने हृदय से पूर्ण प्रतीति पाकर ही रचना की है। साथ ही साथ श्री विनोदमुनिजी के सांसारिक जीवन और साधुजीवन के लिए आधारभूत 'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, फलोदी' की ओर से प्रकाशित पुस्तक जिसका नाम 'स्वर्गस्थ श्री विनोदमुनिजी' है, उसका आधार लिया है। उस पुस्तक में मुनियों के व्याख्यान हैं और विद्वानों के प्रवचन भी हैं। वह पुस्तक मेरी ग्रन्थरचना की घटनाओं को सिद्ध करती है। मैंने उस सारी रूपरेखा के विषय में न्यायाधीश का काम करने का प्रयास किया है। उस पुस्तक से मुझे व्यवहार दृष्टि की साक्षीभूत घटनाएँ मिली थीं। इस ग्रन्थ को लिखने का मेरा हेतु धर्मश्रद्धा के सिवा और कोई नहीं है। श्री विनोदमुनि के गुणग्रामों के गाने का जो लाभ मुझे मिला है, वही मेरा सबसे बड़ा लेखन-मूल्य है। भावार्थ यह है कि केवल निःस्वार्थ भावना से प्रेरित होकर ही मैंने इस ग्रन्थ की रचना की है।

इस कार्य को करते हुए मेरी आत्मा में अपूर्व रस की

जागृति आई है, और वह अपूर्व एवं दृढ़ श्रद्धा को प्राप्त हुई है। स्वर्गस्थ श्री विनोदमुनिजी का यह मेरे ऊपर बड़ा ही उपकार है।

आत्मा को देवता के देवसुख मिलना सुलभ माना जा सकता है; किन्तु शुद्ध धर्मकार्य की प्राप्ति होना अनन्त काल में भी दुर्लभ है। इस कार्य को करते हुए चित्त की प्रसन्नता का जो अनुभव मुझे हुआ है, उस लाभको मैं देवलोक के देवसुखों से भी अधिक मूल्यवान मान रहा हूँ।

मेरे इस निःस्वार्थ बुद्धि के कार्य के बदले में आप के समस्त कुटुम्ब के पास धर्मबुद्धि से मैं यही याचना करूँगा कि, श्री विनोदमुनि का आपको एक क्षण भी विस्मरण न हो ऐसा प्रबन्ध हो।

श्री विनोदमुनि की भावना अवश्य ही शासनानुकारी बनने में और दूसरों को बनाने में ही प्रवर्तमान थी। अपने साथ ही समस्त कुटुम्ब का कल्याण हो, ऐसे उत्कृष्ट भावनाओं से युक्त उनके विचार थे। उसके प्रमाण में हम नीचे का दृष्टान्त दे सकते हैं।

जब श्रीमान् राव बहादुर श्री एम. पी. साहब, श्री केशवलाल भाई पारेख और पण्डित श्री पूर्णचन्द्रजी दक-इन तीनों का मिशन खीचन गया, और अपने साथ राजकोट आनेका जब उन्होने उनसे कहा, तब श्री विनोदमुनिने श्री केशवलाल भाई पारेख को जो उत्तर दिया, वह उत्तर मेरे मतके मुताबिक मढ़ाकर सारे कुटुम्ब को चाहिए कि वह उसे स्वाध्याय रचना रूप बना ले। उस मूल्यवान उत्तर के शब्द ये है :—

'मैंने दीक्षा का अंगीकार कर लिया है, उस में अब किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता। आप हमारे वीराणी कुटुम्ब के हितैषी हैं। अगर आप सही रूप से हितैषी हों, तो मेरी पूज्य माताजी और पूजनीय पिताजी को समझाइए और अब बाद में होनेवाली बड़ी दीक्षा की अनुमति उनसे एक

सप्ताह के भीतर लिवा दीजिए। इतना ही नहीं, पर 'सवी जीव करूँ शासनरसी' की भावना में, और आज दिन तक के मेरे ऊपर के उपकार के बदले में आगम को लक्ष्य कर मेरी भावना यही हो सकती है कि—और है ही कि,—मेरी दीक्षा उनकी दीक्षा का निमित्त बन जाय। मेरे मातापिता सद्गति को प्राप्त करें; यानी मेरे साथ दीक्षा लें। साथ ही साथ आप भी बहुत समय से—बार बार—निवृत्त होने की बातें करते हैं, तो यह स्थल निवृत्ति के लिए अच्छा है। पूजनीय ज्ञानी महाराजों का उत्तम योग है। अतः यहाँ रहकर निवृत्त हो जाइए, और ज्ञान का लाभ लीजिए। ऐसा मेरा आपसे खास अनुरोध है।'

लेखकने ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्री विनोदमुनि का 'थइथुई मंगलम्' पाठ के रूप में स्तवन किया है; और गुरुस्थानागम-न्याय से पंचमहाव्रतधारी का ही वह हो सकता है। इस नियम के अनुसार श्री विनोदमुनि की स्मृति में लेखक, अपने आत्म-कल्याण के लिए धारणा करता है कि, जिन्दगी के अन्ततक हररोज़ सात 'नमोत्थुणं' स्तुति के पाठ को स्वाध्याय रूप से वह करेगा, और भूलने के दूसरे दिन प्रायश्चित्त में रस के परित्याग से आहार करेगा।

इस प्रकार समस्त वीराणी कुटुम्ब को अतिमानपूर्वक लेखक का अनुरोध और सूचन है कि, आपके समस्त कुटुम्ब की ऋद्धि सिद्धि के कारणीभूत जिस पुरुष का माता के गर्भ में आगमन हुआ है, और समस्त जीवन धर्मानुष्ठान को अर्पित कर आपके कुटुम्ब को जिस वीरपुरुषने दीप्यमान किया, उस महर्षि की स्मृति में हररोज़ तीन समय तक, प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल में, 'श्री विनोदमुनि की जय'—इस प्रकार तीन वक्त कहने के बाद ही कवल मुँह में रखना चाहिए। हालाँकि यह नियम पिताजी दुर्लभजी भाई एवं माताजी मणिबहनने तो अपने लिए बना ही लिया है। उसी मार्ग पर समस्त कुटुम्ब उस योगी

की स्मृति में प्रवृत्त हो ऐसी लेखक की नम्र सूचना है।

तदुपरान्त, सद्‌गत की भावना को धर्मानुष्ठान के द्वारा प्रकाश में लाने के कार्य भी करने चाहिए, जैसे आगमों के अध्ययनाध्यापन के लिए पाठशालाएँ जहाँ न हों वहाँ उन्हें खोल कर लक्ष्मी का सदुपयोग करना चाहिए।

वर्तमानयुग में कुमारिकाओं की समस्या को सुलझाना बड़ी कठिन बात है। अतः ब्रह्मचारिणियों का आश्रम खोलकर, ऐसी कुमारिकाओं के चित्तों को धार्मिक ज्ञान की ओर आकर्षित करना चाहिए; और वे उच्च कोटि का जीवन बीता सके ऐसा शिक्षण देना चाहिए, उन्हें शिक्षिकाएं बनाना चाहिए। ठीक इसी प्रकार हमारे समाज में धार्मिक ज्ञानवाले गुरुओं को उत्पन्न करना चाहिए,और श्राविकाशालाओं को भी उत्तेजन देना जरूरी है।

इसे उत्तम कोटिका लक्ष्मी का सद्‌व्यय कहा जाता है। कारण यह है कि इसमें आत्माएँ स्वयं ही पुस्तक का आकार धारण कर लेती हैं।

इस के अतिरिक्त आगमों के पारिभाषिक शब्द समझने मे आएँ, ऐसे ग्रन्थों की भी महती आवश्यकता है। आगमों के रसदायक पुस्तकों को प्रकाशित कर के जैन जनता को धार्मिक लाभ देना चाहिए।

कुछ तिथियों को निश्चित बनाकर, सामुदायिक तपश्चर्याएँ हों, ऐसे प्रबन्ध करने चाहिएँ, और खुद वीराणी कुटुम्ब की वंशपरम्परा में धर्म की ज्योति जागती रहे, और सम्यग्दर्शन की शुद्धि हो, ऐसे ज्ञानाभ्यास का और श्रवण का लाभ देनेवाली रचनाओं का निर्माण भी परम आवश्यक है।

इस सूचन के समर्थन में लेखक यहाँ अपनी भाषा में श्री विनोदमुनि की स्मृति में याथातथ्य रूप में श्री आचारांगसूत्र में से शिक्षाएँ खोजकर प्रकट करता है।

श्री विनोदमुनि की श्रद्धाञ्जलि में लेखक की आगम प्रवचनों की प्रभावना।

द्वादशांगों में प्रवर्तमान श्री तीर्थंकर भगवानों की वाणी का सूर।

समस्त शिक्षाएँ श्री विनोदमुनि के सम्यक्चरित्र को सिद्ध करती हैं।

श्री तीर्थंकर देव समोसरण में विराजमान होकर, आगमों को प्रकाश में लाते हैं। उस वाणी का सूर द्वादशांगों में मुख्य श्री आचारांग सूत्र से शुरू होता है, और उपांगसूत्रों में श्री उववाय-सूत्र से शुरू होता है। उस समय की समोसरण की स्थिति का वर्णन और वाणीसूर निम्नलिखित है।

चतुर्थ आरे की नगरियों का, राजाओं का, रानियो का और श्री महावीर प्रभु का वर्णन दिव्य भाषा स्वरूप से श्री उववाय सूत्र में से प्राप्त होता है। नगरियों के बाहर उद्यानों में दिव्य स्वरूप से समोसरण की रचना होती है। पृथ्वीशिलापट पर तीर्थंकर देव महती परिषदों के समक्ष जब उपदेश करते हैं तब परिषद् का स्वरूप महत् होता है। वर्णन उसका नीचे दिया जाता है :—

नगरी के राजा और रानियों की उपस्थिति के बीच महती परिषद्, ऋषियों की परिषद्, मुनियों की परिषद्, यतियों की परिषद् देवताओं की परिषद्, अनेक वृन्द-समूहों का होना, ऐसी महती परिषदों में श्री भगवान की वाणी बलवती, अतिबलवती, महाबलवती, अपरिमितबलवती, वीर्यतेजमहाप्रभाववती, महाकान्तियुता, शरदृतुगर्जा के समान मधुर, मिष्ट, गंभीर, क्रौंचपक्षी के स्वर समान, दुन्दुभी स्वरानुकारिणी, हृदय में विस्तृत होकर कण्ठ में वर्तुलाकार घूमनेवाली मस्तक में प्रवेश कर सर्वांग स्पष्ट अलग अलग अक्षरोच्चारशालिनी, मणमणाहट से रहित उच्चारवाली

सर्वाक्षर सन्धियुता, स्वरव्यंजनगणितयुता, सर्वदेशभाषानुगामिनी सरस्वती, सुननेवालों को एक योजन-चार कोस-तक सुनने में आ सकती है। प्रसन्न चित्त से प्रशान्तरसपूर्ण यह अर्धमागधी भाषा इस प्रकार से बोली जाती है कि, आर्यअनार्य लोग एवं तिर्यञ्च और देवतागण अपनी अपनी भाषा में समझ जाते हैं।

श्री भगवान की वाणी का सूर ।

'अस्ति' है लोक की, 'अस्ति' है आलोक की-इस प्रकार जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जर, बन्ध, मोक्ष-इन नवों तत्त्वों की 'अस्ति' है। इसी प्रकार अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव चतुर्गति रूप लोक, माता-पिता, ऋषि, देवलोक, देवतागण, सिद्धस्थान, सिद्ध सभी की 'अस्ति' है, एवं अठारह पापस्थानों की भी 'अस्ति' है।

इस प्रकार समोसरण में विराजमान होकर श्री तीर्थंकर देव, अनेक प्रकार से 'अस्ति'भाव को तत्त्व (अस्तिभाव) से सिद्ध करते हैं, और 'नास्ति'भाव को तत्तासे-नास्तिभावसे सिद्ध करते हैं। ये भाव भगवान की वाणी में स्वर रूपसे गुम्फित होकर वाग्धारा के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

ऐसे भावों से युक्त द्वादशांगों में से प्रथम आगम ही श्री आचारांगसूत्र है। उसमें प्रवृत्त भावों के साथ श्री विनोदमुनि के जीवन को गहरा सम्बन्ध है।

श्री आचारांग सूत्र-प्रथम अध्ययन ।

"शस्त्रपरिज्ञा"-उद्देश प्रथम ।

इस प्रथम उद्देश का सार सातवें प्रकरण में प्रकट हो चुका है। दूसरे उद्देशों के आधारसे:- जगत के जीव अनिष्ट का संयोग होने से और इष्ट के वियोग से आर्तध्यान होते हैं, और विषय-

कषायरूप अग्नि में पचकर-जलकर-शक्तिहीन बन जाते हैं। अतः उन्हें समझाना बहुत कठिन बात है।

जगत के जीव षट्कायजीव, पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय की हिंसा करते हैं। उन में निम्नलिखित जीव रहे हुए हैं।

पृथ्वीकाय के सरसों परिमित विभाग में, पानी की एक बूँद में, अग्नि के एक स्फुलिंग में, और चुटकी बजाने की परिमित वायु में असंख्यात असंख्यात जीव हैं।

वनस्पतिकाय के दो भेद हैं-(१) प्रत्येक, (२) साधारण। प्रत्येक वनस्पति में तीन प्रकार के जीव हैं-(१) संख्यात, (२) असंख्यात और (३) अनन्ता।

साधारण वनस्पति में एक सूई के अग्रभाग प्रमाण में अनन्ता जीव, कन्दमूल में रहते हैं।

इस प्रकार पृथ्वी, जल तेज (अग्नि), वायु और वनस्पति को 'स्थावर जीव' कहा जाता है। व्याख्या इस की यह है कि जो हल-चल नहीं कर सकते वे जीव स्थावर कहलाते हैं। वे स्थावर जीव खुद की 'जीवता' व्यक्त करने की पुण्यशालिता से रहित होते हैं। स्थावर नामकर्म के उदय से उन्हें स्थावर कहा जाता है।

इन स्थावर जीवों की दया का, धर्मतत्त्व के साथ सम्बन्ध है। उस दया की आराधना, तो द्वादशांगाराधक शुद्ध सम्यग्ज्ञान-शाली साधु ही कर सकता है। ऐसे दया के आराधक को द्वादशांग 'शूर' की उपमा देते हैं।

स्थावर जीवों के साथ अनेक त्रस जीवों की भी हिंसा होती है।

त्रसजीवों की व्याख्या :- हलनचलन से युक्त जीव, यानी जो जीव खुदकी 'जीवता' को प्रकट करने की पुण्यशालिता

रखते हैं, त्रसनामकर्मों का जिनको उदय हुआ है, उन्हें त्रस जीव कहा जाता है।

श्री आचारांग सूत्र में स्थावर तत्त्व को समझने के लिए अनेक ढाँचों की रचना करने में आती है।

जल के लिए श्री भगवान फरमाते हैं कि, जो पानी में रहे हुए जीवों की शंका करता है, वह आत्मा के अस्तित्व की ही शंका करता है, और जो आत्मा के अस्तित्व की शंका करता है, वह लोक की शंका करता है। इस प्रकार शंका की परम्परासे वह नास्तिक बन जाता है।

अग्नि के विषय में भगवान फरमाते हैं कि, अग्नि-काय का आरम्भ बड़ा जुल्मगार है।

वनस्पति की व्याख्या करते हुए भगवान फरमाते हैं कि, जिस प्रकार मनुष्यशरीर को बन्धन हैं, वह बढ़ता है, जन्म लेता है, मरता है, उसी प्रकार के भेद वनस्पति में भी हैं।

वायुकाय की व्याख्या करते हुए भगवान फरमाते हैं कि, जो दूसरों के दुःखों को जान सकता है, वह वायुकाय की हिंसा से निवृत्त हो सकता है।

साधु होकर यानी 'साधु' नामधारी होकर जो षट्काय जीवकी हिंसा करता है, उसका नामधारित्व व्यर्थ ही सिद्ध होता है। अतः जीवन का निर्वाह करने के लिए, वन्दना-गुणानुवादादि के लिए, सत्कार-सम्मान के लिए, धर्म के लिए या शारीरिक दुःख के निवारण के लिए, साधु होकर जो षट-काय जीव की हिंसा करता है या अनुमोदन करता है, उस साधु को उस हिंसा का फल अहितकारी, दुःखप्रद और समक्ति-नाशक ही होगा।

साधु के लिए षट्काय का आरंभ, आठ कर्मों का कारणी-भूत है, मोह के लिए हेतु भूत है, मृत्यु के लिए भी कारण है; नरक का भी कारण है।

त्रसकाय के आठ भेद श्री भगवान ने आदिष्ट किए हैं:-

१. अण्डज = अण्ड में से उत्पन्न पक्षी आदि!
२. पोतज = थेली में से उत्पन्न हाथी आदि!
३. जरायुज = जरायु में से उत्पन्न गाय-भैंस आदि!
४. रसज = रस में से जन्म पाने वाले कीड़े आदि!
५. स्वेदज = पसीने में से उत्पन्न होने वाले लीक आदि कीड़े!
६. सम्मूर्च्छिम = अपने आप ही उत्पन्न!
७. उद्भिज = भूमि को फाड़कर उत्पन्न होने वाले तीड़ आदि जीव!
८. औपपातिक = देवता और नारकीय!

देवता शय्या में उत्पन्न होते हैं; नारकीय कुंभी में उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार आठ प्रकार के लोक, व्यवहार लोक संज्ञित हैं; क्यों कि जीव तत्त्व की वे पहचान देनेवाले हैं। सुख-दुख की भावना प्रकट करने-कराने वाले ये लोक हैं। इन लोकों से सिद्ध होता है, कि सर्व जीवों को सुख प्रिय है, दुःख, अप्रिय और भय का कारण है।

स्थावर जीवों की अपेक्षा, त्रस जीव अनन्तानन्त मात्रा में पुण्यशालिता को धारण करने वाले हैं, जब कि स्थावर जीव पुण्यशालिता से हाथ धो बैठे हुए हैं। अतः उनकी दया, श्री श्रमण भगवन्त महावीर द्वारा प्ररूपित द्वादशांगी के अन्दर ही है। उन अंगों के शासन में, इन स्थावर जीवों की दया को प्राधान्य दिया गया है।

इस नियम के अनुसार द्वादशांगों की आज्ञा में प्रवर्तमान साधु, नवकोटि से पच्चक्खाण-युक्त होने से षट्काय जीव की हिंसा नहीं कर सकता। इतना ही नहीं वह करवाता नहीं और अनु-मोदन भी नहीं देता। वही शुद्ध संयमी साधु कहा जा सकता है।

उपर्युक्त प्रकार से, 'ज्ञ' परिज्ञा से पट्काय जीवों का स्वरूप किसने जाना था, और 'प्रत्याख्यान' परिज्ञा से आरम्भ परिग्रह का त्याग किसने किया?

श्री विनोदकुमारने ही, कि जिन्होंने भगवान की आज्ञा के अनुसार संयम को पालने का पुरूषार्थ किया। उसके समर्थन में श्री आचारांगजी सूत्र के दूसरे अध्ययनों में से कुछ रूप रेखाओं का चुनाव किया गया हैं। उन्हें प्रभावनार स्वरूप से पाठकगण के आगे पेश किया जाता है।

श्री आचारांग सूत्र—अध्ययन द्वितीय, लोक विजय।

लोक-विजय का अर्थ, जीव का कर्मवन्धों को तोडकर सिद्ध गति का प्राप्त करना ही होता है।

विषय-संसार का हेतु और संसार का हेतु ही 'विषय' कहलाता है। विषयार्थी महान दुःख का भागी होता है। 'विषय', संसार के सभी जड़चेतन पदार्थों में मोह उत्पन्न करते हैं। मरते समय जीव को कोइ त्राण-शरण नहीं देता।

वृद्धावस्था में हास्यादि क्रीडा भी नहीं अच्छी लगती; अतः यौवन की अवस्था ही धर्मकरण के लिए उपयोगी है।

शरीर में जब रोग आते हैं, तब लक्ष्मी भी काम नहीं कर सकती। हरएक जीव अपने अपने सुख दुःख भिन्न भिन्न प्रकार से भोगता है। जो स्नेह का त्याग करता है, वही संयम में दृढ़ रह सकता है।

संयम पालते पालते 'अरति' उत्पन्न अगर हो तो, उसे दूर करनेवाला ही मुक्ति प्राप्त करता है।

जो कामभोगों को त्यागकर, लोभ को निर्मूल करके दीक्षा लेता है, वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होता है।

धन और स्त्री-दोनों आरम्भ समारम्भ के कारण हैं।

"पण्डित लोग मोक्षसमझकर जीव हिंसा नहीं करते, अनुमोदन भी नहीं देते।"

"भोग से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं, अतः भोगासक्ति हमेशा त्याज्य ही समझनी चाहिए।"

"धीर पुरुष, विषयवाञ्छा और प्रलोभन से दूर रहते हैं। स्त्री और धन को सुख माननेवाला अज्ञानी ही है।"

"जिस धन से सुख मानने में आता है, वही धन कदाचित् दुःख का कारण भी बन सकता है।"

"मोहमें फँसा हुआ धर्म को नहीं समझ सकता।"

"शरीर को क्षणभंगुर समझकर चतुर पुरुष प्रमाद नहीं करता।"

"भोगों की कदापि तृप्ति हो ही नहीं सकती।"

"खेदरहित संयम को पालनेवाला पराक्रमी है।"

"शुद्ध मुनि, आहार की भिक्षा में सावधान रहकर सदोष आहार ग्रहण नहीं करता, नहीं कराता और अनुमोदन भी नहीं देता।"

"साधुओं को चाहिए कि वे अवसर, आत्मबल, विभाग, अभ्यास, विनय, स्वमत,-परमत की भावना आदि को जानकर ममत्व का त्याग करें, और फल की वांछा से रहित होकर मोक्षमार्ग की ओर प्रवृत्त हों।"

"साधुओं के लिए उपयोगी वस्त्र, पात्र आदि चीजें मिल जाएँ तो उन्हें प्रसन्न होना चाहिए, अगर न मिलें तो उन्हें उदास नहीं होना चाहिए।"

"कामभोगों के लिए लालायित दुःखी होता है।"

"जो आत्मज्ञानी दुनिया के विचित्र रंगों को जानता

है, वह लोगों के उच्चनीच एवं तीछीं भाग को जानता है, यानी लोक में जीव कैसे उत्पन्न होते हैं, वह जानता है।"

"जो जीव विषयों को छोड़ता है, वह प्रशंसनीय है।"

"साधु पुरुष मल–मूत्र से भरे हुए शरीर के विषय में ममत्व नहीं रखते।" सच्चे त्यागी 'त्यागी' बनने के बार फिर से संसारी नहीं बनते।"

"कामी पुरुष अपनी आत्मा से वैर करते हैं। गर्वी पुरुष को हमेशा ही शरीर की चिन्ता बनी रहती है।"

"इस संसारमें प्राणियों का वध हो रहा है, वह प्रत्यक्ष दुःख है–ऐसा समझकर किसीको भी दुःख हो, ऐसा कर्म नहीं करना चाहिए, वही परिज्ञा है।"

"पराक्रमी बाह्य पदार्थोंकी ओर दिल को नहीं लगाता।"

"साधु को चाहिए कि, कामभोगों को जीतने के लिए वह शरीर को दुर्बल बनाए।"

"तत्त्वज्ञानी मोक्षमार्ग को छोड़कर अन्य मार्ग में रमण नहीं करता।"

"निःस्वार्थी मुनि, राजा और रंक दोनों को समान मानकर उपदेश देता है। वह उपदेश श्रेणी ऐसी होती है कि विपरीत परिणाम को वह सृष्ट नहीं करती।"

आचारांग–तृतीय अध्ययन, 'शीतोष्णीय'–शुभाशुभ।

"पापी जीव परमार्थ को नहीं जानता। जाग्रत अवस्था में भी वह सोये के समान ही है। परमार्थदर्शी साधु सुप्त होनेपर भी जाग्रत के समान ही है।"

"जो पुरुष शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श की सुन्दरता–विरूपता में समभाव धारण करता है, वह आत्मा, ज्ञान, वेद, धर्म और ब्रह्म को जानता है, और लोकों को जान सकता है।"

"जगत के जीवों की दुःखोत्पत्ति का मूल कारण आरम्भ है।"

"जिस महात्मा को मृत्यु का डर है, वह विषयों से दूर रहता है।"

"काम भोगों में जो आसक्त बनता है, उसे फिरसे गर्भ में आना पड़ता है।"

"तत्त्ववेत्ता नरक के दुःखों का विचार करके पाप नहीं करते।"

"जो कर्म को दूर करता है, वह खुद को देखता है।"

"भोगों के सुखों का धिक्कार करने से स्त्री की आसक्ति कम होती है।"

"समताभाव और शान्त स्वभाव में रमण करने से साधुता प्राप्त होती है।"

"मुनि को रूपलोभी नहीं बनना चाहिए।"

"गति-अगति का विचारक किसी भी पदार्थ से छिन्न नहीं होता, भिन्न नहीं होता, जलता नहीं, मरता नहीं है। इस प्रकार द्रव्य और भाव से आत्मा स्थिर होती है।"

"जैसे जैसे कर्म हों, ऐसे ऐसे स्थानों में जीव उत्पन्न होता है, इससे विपरीत प्ररूपणा मुनि को नहीं करनी चाहिए।"

"योगियों के मनमें खुशी या उदासी नहीं होती। दुःख धर्मनाश के कारण बनते हैं—ऐसा समझ कर परिषहों को सहन करना चाहिए।"

"जो कर्म को दूर करता है, वह मान, माया, लोभ को दूर करेगा।"

"प्रमादी को सभी चीजों में भय मालूम पड़ता है।"

"जिसने मोह को दूर किया, उसने सभी को नष्ट किया समझना चाहिए।"

"पराक्रमी कुटुम्बसम्बन्ध को छोड़ सकता है।"

"तीर्थंकर के वचनों की श्रद्धा रखनेवाला लोकस्वरूप को पहचान सकता है।"

"जो क्रोध को छोड़ता है, वह मान को छोड़ता है मान को छोड़नेवाला माया को छोड़ सकता है माया छुटने पर लोभ छूटता है, अन्त में रागद्वेष को छोड़कर उसे मोक्ष प्राप्त होता है।"

आचारांग चतुर्थ अध्ययन "सम्यक्त्व।"

समस्त तीर्थंकर जगत् के जीवों को सम्बोधन करते हुए उपदेश देते हैं कि जीव हिंसा को न करना ही शुद्ध, सनातन और शाश्वत धर्म है।

इस शाश्वत धर्म का अंगीकार करने में प्रमाद नहीं करना चाहिए, और ग्रहण करने के बाद प्राण छोड़ने का मौका आ जाय, तो भी छोड़ना नहीं चाहिए। दुनिया के रंगरागों में मोह नहीं करना चाहिए, और लोगों का अनुकरण नहीं करना चाहिए।

ज्ञानी महात्मा का बोध संसार के सरल जीवों को धर्म-कार्य करने का निमित्त बनता है।

संसारी जीवों की क्रिया में जितनी मात्राओं मे क्रूरतादि भाव हैं, उस हद तक दुःखयोनी में उत्पन्न होना पड़ता है।

सच्चा सम्यग्दर्शनी, आरंभ को कर्म का कारण मानकर आरम्भ से मुक्त हो जाता है।

जिन आज्ञा चाहती है कि अपनी आत्मा को अकेला मानकर शरीर को तपसे कृश—दुर्बल—करना चाहिए।

वही पुरुष मोक्षगमन के लिए योग्य समझा जाता है, जो तपश्चर्या से शरीर के रक्त और मांस को सूखा देता है।

मोह में फँसे हुओं को भगवान की आज्ञा का लाभ नहीं मिलता। कृत कर्मों के फल अवश्य ही भुगतने पड़ते हैं।

तत्त्वदर्शी के लिए किसी भी प्रकार का उपाधि नहीं होता।

आचारांग पंचम अध्ययन "लोकसार।"

जिस को भवभ्रमण करने के होते हैं, उसके लिए विषय

त्याग कठिन ही होता है; तत्त्वदर्शी की दृष्टि आयु की स्थिरता पर ही होती है।

चतुर पुरुष को चाहिए कि वह कदापि स्त्रीसंग न करे, कदाचित् हो जाय, तो प्रायश्चित्त करके शुद्ध होना चाहिए।

मन से भी कामभोगों की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

अगर कर्मोदय से साधु को रोगोत्पत्ति हो, तो उसे सहन कर लेना चाहिए, पर पापोपचार तो कदापि नहीं करना चाहिए, क्यों कि शरीर का एकबार तो जरूर पतन होनेवाला ही है।

सम्यक् प्रकार से देखनेवाला नरकादि गति नहीं करता।

सच्चे त्यागी को ज्ञानादि गुणों की प्राप्ति होती है।

निष्परिग्रहत्व में ही ब्रह्मचर्यादि स्थिर रह सकते हैं।

आत्मा खुद के द्वारा ही मुक्ति प्राप्त करेगी, अतः निष्परिग्रही को संकट सहन करने चाहिए।

समता में ही स्थिर धर्म समाविष्ट है।

"मुनि को चाहिए कि वह शरीर से कसकर कर्मों के साथ लड़े। दूसरी सभी लड़ाइयाँ व्यर्थ हैं। उस लड़ाई के योग्य ऐसा शरीर मिलना, नितान्त दुर्लभ है।"

"जिनशासन ऐसा कहता है कि, विषयासक्त ऋमिक बनता है। सम्यक्त्व ही सच्ची साधुता है, और साधुता ही सम्यक्त्व है।"

विषयासक्त, कपटी, प्रमादी, गृहसमत्वी साधु नहीं हो सकता। साधु का प्रधान कर्तव्य यही है कि उसे सदैव गुरु के दृष्टिपथ में रहना चाहिए, और बड़े यत्न से कार्य करने चाहिए।

साधु को स्त्रीदर्शन से यही विचार आना चाहिए कि, स्त्री में मेरा कल्याण नहीं है। कदाचित् मोह बढ़ जाय, और इन्द्रियाँ पीड़ित करें, तो उन्हें शान्त करने के लिए तुच्छ आहार करना चाहिए, एक स्थानवमें कायोत्सर्ग करना चाहिए, या तो उस गाँव को छोड़ देना चाहिए। फिर भी अगर मोह न छूटे तो

आहार छोड़ देना चाहिए; पर स्त्रीसंग से तो हमेशा के लिए दूर ही रहना चाहिए।

ब्रह्मचारी को चाहिए कि–

१. वह स्त्रीशृंगार की कथा न करे।
२. स्त्रियों के अंगोपांगों का निरीक्षण वह न करे।
३. स्त्रियों के साथ एकान्त में वह न बैठे।
४. किसी स्त्री से वह प्रेम न करे।
५. स्त्री का कार्य वह न करे।
६. और क्या? वह स्त्री के साथ सम्भाषण तक न करे।

"अध्ययनाध्यापन के लिए चतुर्भंगी"

१. द्रह (ह्रद) में से पानी निकलता है, और आता है; जैसे "सीता सीतोदा नदी" उसी प्रकार इस प्रथम श्रेष्ठ भांगे के (विभाग के) साधु पढ़ते हैं, और पढ़ाते हैं।
२. द्रह (ह्रद) में पानी निकलता है, पर आता नहीं है उदाहरण पद्मद्रह (ह्रद) इस भांगे के–विभाग के साधु पढते हैं, पर पढ़ाते नहीं।
३. द्रह में पानी आता है वरना निकलता नहीं है 'समुद्र' इस भांगे का साधु पढ़ते है और पढ़ाते भी नहीं।
४. द्रह (ह्रद) में पानी आता भी नहीं, और निकलता भी नहीं। इस भांगे के विभाग के साधु, पढ़ते भी नहीं, और पढ़ाते भी नहीं।

"पढने–पढ़ाने वाले की आत्मा शुद्ध रहती है।"

कृत के फलमें शंका करनेवाला असमाधि की मौत से मरता है।

तीर्थंकर भगवान के वचन अगर समझ में न आएँ, तो श्रद्धा में ही स्थित रहना चाहिए, पर भ्रष्ट नहीं होना चाहिए।

दूसरोंको दुःख देते समय यह सोचना चाहिए कि, मैं उस जीव को दुःख नहीं देता, पर खुद को दुःख दे रहा हूँ; क्यों कि उसका दुःखफल मुझे अवश्य ही भुगतना पड़ेगा।

जाननेवाला पदार्थ आत्मा ही है।

आत्मवादी का संयम ही सही आत्मसंयम है।

वस्तुज्ञान के तीन ही मार्ग हैं-(१) जातिस्मरणज्ञान, (२) श्री तीर्थंकर भगवान के वचनों में श्रद्धा और (३) आचार्य के पास से श्रवणलब्धि।

सारे जगत् में पापप्रवाह बह रहा है।

आस्रव के अवरोध से यानी नवीन कर्मों के बन्धन के अटक जाने से मोक्ष हस्तामलकवत् हो जाता है।

मोक्ष के सुख को समझाने के लिए शब्द काम नहीं करते। वह कल्पना का भी विषय नहीं है। मोक्ष के सुख के लिए अगर कहना चाहें, तो हम इतना ही कह सकते हैं कि,

सर्वकर्मरहित एकाकी जीव, सम्पूर्ण ज्ञानमयता से विराजित है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और आकार से वह भिन्न है। उन चीजों का वह ज्ञाता है, द्रष्टा है। समता ही मोक्ष के रूप की चाबी है।

आचारांग-षष्ठ अध्ययन-" धूताख्य।"

जिस प्रकार कोई पुराना कूप पर्णों से आच्छादित हो जाता है, और उस में रहा हुआ कच्छप अशक्त बन जाता है, उस का बाहर आना मुश्किल हो जाता है, उसी प्रकार संसार के जीवों को संसार छोड़कर मोक्षमार्ग में आना मुश्किल हो जाता है।

कर्मों से जीव को अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, उनमें कण्ठमाल आदि सोलह रोग मुख्य हैं ।

तिर्यञ्च जीवों की ओर देखो—वे साक्षात् दुःखों को भोग रहे हैं।

औषध से ज़रा भी रोग दूर नहीं होता, पर हिंसारूप औषध कर्मरूपी रोग की तो अवश्य ही वृद्धि करता है ।

दीक्षा लेनेको उद्यत होनेवाले को माता–पिता की अनुमति प्राप्त करनी कठिन हो सकती है, तथापि वह वैरागी अपने वैराग्यमार्ग से वंचित नहीं रह सकता—पीछे नहीं हटता ।

साधु को सोचना चाहिए कि, "मेरा कोई नहीं है; मैं अकेला ही हूँ । मुनि को चाहिए कि वह मिताहारी बनकर ऊनोदरीतप का आश्रय ले ।

धर्म का क्षेत्र आत्मा में ही स्थित है ।

उत्तम और एकाकी विहार करने वाले साधु को चाहिए कि वह समभाव से ही अपना वर्तन करे ।

सदाचारी मुनि धर्मोपकरणों के अलावा दूसरी किसी चीज़ को अपने पास नहीं रखता ।

मुनि, भूतकाल के तपस्वियों के तप को अपनी दृष्टि के समक्ष रखकर ही तप करता है ।

साधु को अपने शिष्यों को धर्म में प्रवीण बनाना चाहिए। विषयवासना इतनी प्रबल है कि, वह बहुतों को दीक्षा लेनेके बाद भी गिरा सकती है। ऐसी विषयवासना को ठीक तौर से समझकर, विद्वान को चाहिए कि वह किसी पवित्र पुरुष के साथ रहकर 'संयम' का पालन करे।

साधु को एक ही जगह स्थिरवास नहीं करना चाहिए।

आचारांग अष्टम अध्ययन 'विमोक्ष'।

केवलज्ञानी ने कहा है कि, विवेकी को धर्मकार्य के विषय

में गाँव या वनमें किसी भी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती, जब कि विवेकहीन को गाँव हो या जंगल, कर्मबन्धन का ही कारण बन जाता है।

महाव्रत के तीन भेद हैं अहिंसा, सत्य और निर्ममत्व। क्रोधरहित जो हुआ वही 'नियाणा' रहित भी हो चुका।

साधु को चाहिए कि वह निरीक्षण के अयोग्य आहार न करे, और ऐसे स्थान का भी उपभोग वह न करे। आहार देनेवाला गृहस्थ क्रोधी अगर मारे, तो मार को सहन कर लेना चाहिए। शक्य हो तो उसे समझाना चाहिए। अगर वह न समझा, तो मौन का अवलम्बन कर लेना चाहिए।

साधु के शीत-परिषह को देखकर अगर कोई गृहस्थ वहाँ अग्नि को जला दे, तो साधु को उसका अनादर कर देना चाहिए।

अगर शीत परिषह साधु से सहन न हो, तो 'संथारा' उचित माना गया है, पर व्रतभग उचित नहीं है। मोहरहित पुरुष के लिए वह 'पण्डितमरण' ही उचित है, हितकर, सुखकर, योग्य और कर्मक्षयकारी है।

आहार में स्वाद प्राप्त करने के लिए, साधु को कवल एक कपोल से दूसरे कपोल में नहीं ले जाना चाहिए।

साधु को जब ऐसा लगे कि, वह संयमक्रिया ठीक तौर से नहीं पाल सकता, तब आहार को घटाना चाहिए, और कषाय क्षय करना चाहिए।

साधु को अगर रोगवृद्धि हो, या रोग से वह अशक्त बन जाए, तो उसे चिन्ता मुक्त हो कर 'सागारी संथारा' करना चाहिए। अर्थ यह है कि उसे सोचना चाहिए कि "अगर मैं अच्छा बन जाऊँगा, तो आहार की कल्पना होगी; अन्यथा अगर आयु खत्म हो ही गई है, तो मैं पण्डित मरण से ही मरूँगा।"

एक साथ अगर आहार न छूटे तो धीरे धीरे उसे घटाना चाहिए, और अन्त में बिल्कुल त्याग कर देना चाहिए।

गीतार्थी, जघन्य से नव वर्ष तक का 'ज्ञानी संथारा' करने के बाद, किसी भी प्रलोभन से वशीभूत नहीं होता, और निदान भी नहीं करता।

आचारांग-अध्ययन पच्चीसवाँ – 'विमुक्ति'

"परिषह और आरंभ से बचना चाहिए।"

"पर्वत की तरह धर्म में अड़िग रहना चाहिए।"

"मध्यस्थ भाव का आलम्बन कर के किसी जीव की बात नहीं करनी चाहिए।"

महाव्रत सभी जीवों को क्षमा देनेवाले हैं। उन महाव्रतों से साधु अन्धकार रूपी अज्ञान का नाश कर देते हैं।

जिस प्रकार अग्नि से चाँदी का मैल चला जाता है, उसी प्रकार महाव्रतों से कर्मों का नाश हो जाता है।

जिस प्रकार साँप अपनी त्वचा को उतार देता है, और उसे वापिस ग्रहण नहीं करता, उसी प्रकार उत्तम साधु, संसार छोड़ने के बाद वापिस उसका ग्रहण नहीं करता।

जो साधु यह जानता है कि समुद्र दो भुजाओं से तैरना मुश्किल है, इस प्रकार संयम भी कठिन है; इस प्रकार कठिनाई को समझकर ग्रहण किया गया संयम समुद्र को भी पार करा देता है–समस्याओं को वह सुलझा देता है।

जो बन्ध और मुक्ति का स्वरूप जानता है, वह मुक्ति को प्राप्त करता है।



आत्म साधना

(राग-गुजराती के एक 'धोल' का)

मानवभव सार्थक करने बड़ी, जलती जिज्ञासा का सा
चन्दन हों जी विनोद वीर को

पहचानी जगत सपन-व्यर्थता, विभव में दिया ज़रा न हाथ व.

सद्गुरु औ' शास्त्रों के योग से, जाने दुख से भरे विलास,
आस्रव-संवर-अजीव-जीव को, निर्झर औ' मुक्ति जगनिवास व.

जाग्रत है दृष्टि भी विवेक की, ज्ञान है प्रति-अक्ष औ' परोक्ष,
मुक्त हुए दर्शन के मोह से, सम्यग्दर्शन बहा प्रकाश व.

जीवन का हेतु ज्ञान प्राप्त कर, त्यागी एहलोक भोग आस,
संयम ही जीवन का मन्त्र था, निःस्पृहता श्वास-उच्छ्वास व.

उपशम कर के कषाय चार का, अहंभाव छोड़ा सभान,
कीर्ति-ऋद्धि-सिद्धि को कुटुम्ब को, माना है पर्ण के समान व.

अप्रमत्त आत्मभाव से बने, नष्ट बने पँचों प्रमाद;
निजसमान ज्ञान जीव मात्र का, प्रेमनदी बहती अगाध व.

निश्चल है आत्मा का पन्थ यों, चञ्चलता नहीं लव लेश,
जगद्भाव में उदास हो रहे, आत्मभाव रक्ति थी परेश व.

जीवन से मुक्त बने सिद्धि से, तीन भुवन ले लिये जी हाथ,
मानवभव सार्थक करने बड़ी, जलती जिज्ञासा का साथ व.

बालब्रह्मचारी विनोदमुनिजी के

'अहम् भिख्खु' के उद्गार के साथ

शुद्ध चरित्र के विषय की उत्कृष्ट भावना के विषय में

संवत् २०१४ के ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी, और ता. ३०-५-'५८ के दिन बा. ब्र. विदुषी महासतीजी श्री जयाबाई स्वामीने, नयी पौषधशाला में दिये हुए प्रवचन का अवतरण।

आज ब्रा. ब्र. विनोदकुमार की दसवीं तिथि है। मेरा चातुर्मास गोण्डल है, अतः आगामी तिथि पर मेरी उपस्थिति यहाँ नहीं होगी।

श्री अनुयोगद्वार सूत्र में चार प्रकारवाले सामयिक को कहा गया है। प्रथम है समकित सामयिक। वह देव, गुरु और धर्म को तत्त्वत्रय को भली भाँति धारण करती है। दूसरी समक्ति को सूत्रसामयिक कहा जाता है। तत्त्वज्ञानाध्ययन उसका लक्षण है। तीसरी को देशविरति सामयिक कहा गया है। उसका मतलब विरति और श्रावकों की अविरति से है। चौथी का नाम सर्वविरति सामयिक है। वह सर्व 'सावज्जजोग (सावद्ययोग) के सेवन करने के पच्चक्खाणवाली है। इस सामयिक के स्वामी महापुरुष ही होते हैं। वैराग्यवान् बालब्रह्मचारी विनोदकुमार मुनि ने इस चौथे प्रकारकी सामयिक का स्वयं स्वीकार किया, और अपने आत्मकल्याण के पथ पर चढ़ गए।

विरला जानन्ति गुणान्, विरलाः कुर्वन्ति निर्धने स्नेहम्।
विरलाः परकार्यरताः, परदुःखेऽपि दुःखिताः विरलाः॥

अर्थः–विरल पुरुष ही गुणों को जानते हैं; विरल पुरुष ही निर्धनों के ऊपर स्नेह रखते हैं; विरल आदमी ही दूसरों के कार्यों में रस लेते हैं; और दूसरों के दुखों से दुःखित होनेवाले भी विरल ही होते हैं।

बाल ब्रह्मचारी विनोदमुनि के जीवन में
ये सब गुण गुम्फित ही थे।

महान ऋद्धिशाली और उच्चकुटुम्ब में जन्म लेनेवाले, एवं आदर्श मातापिता के सुपुत्र विनोदकुमार भाई का जीवन आदर्श और संस्कारी था, यह तो हम सब ने अपनी नज़रों से देखा है। एक को बुलाने पर पाँच हाज़िर हों, पानी माँगने पर दूध मिले, ऐसा वातावरण था। उस में पोषित हुए विनोदकुमार पापभीरु थे भौतिक वासनाओं से दूर थे; जिज्ञासु थे। वे सोते हों या जाग्रत हों, पर ज्ञानलब्धि ही उनका एकमात्र लक्ष्य था। हमारे पास भी अक्सर उनके दो प्रश्न आते रहते थे (१) दीक्षा ग्रहण करने के लिए कितनी हद तक अभ्यास करना चाहिए? (२) मोक्ष को प्राप्त करने के लिए छोटे से छोटा मार्ग क्या हो सकता है? ये दोनों प्रश्न अतीव रहस्यमय थे। विनोदभाई कौन सी भूमिका के ऊपर थे, उनकी आन्तरिक भावनाएँ क्या थीं, और उनका आत्म लक्ष्य क्या था, यह स्पष्टरूप से समझा जाता था। संसारियों एवं संयमधारियों को किस तरह शान्ता प्राप्त हो, यही उनका निरन्तर ध्येय बना रहा था।

सौभाग्यवती, सरलस्वभावी, सद्गुणी, सदाचारी मणिबहनने हमारे आगे स्वानुभव की बातें करते हुए बताया था कि, "विनोदभाई गर्भ में थे, तब मेरी हमेशा एक ही भावना रहती थी कि, मैं दूसरों के दुःखों में किस प्रकार सहाय दे सकती हूँ? किस प्रकार दानशीलता में वृद्धि करूँ? किस तरह सुपात्र-दान करूँ? तदुपरान्त वैराग्य की भी मुझे उस समय प्रबल भावना रहती थी।"

ज्ञानी पुरुषों का कथन है कि महान् आत्माओं के लक्षण, गर्भ में से ही व्यक्त होते रहते हैं। यह कथन उपर्युक्त उदाहरण से सिद्ध होता है।

बा. ब्र. विनोदकुमार मुनि, दीक्षित होने के बाद, उनके दर्शन करने की, उनके मातापिताकी, वीराणी कुटुम्ब की, राजकोट में निवास करते भाइयों और बहनों की एवं त्यागियों-वैरागियों-की भी भावना थी; परन्तु उनके मुनिवेश में तो रा. ब. एम. पी. साहबने ही दर्शन का लाभ लेकर महाभाग्य प्राप्त किया है। राव बहादुरने खीचन से राजकोट वापिस आने के बाद, वहाँ की घटना का वर्णन करते समय दो महत्त्व की बाते मुझ से कही थीं। एक बात यह कही थी कि—"बा. ब्र. विनोदकुमार मुनि को मैंने जब प्रथम मुनिवेश में देखा, तब उनके मुनिवेश और रजोहरण ऐसे शोभित हो रहे थे कि मानो मुनि जी बहुत वर्षों के पुराने संयम धारी हों।" दूसरी बात उनकी यह थी कि—"मुनिजी के साथ की गई बातचीत में मुझसे 'विनोदभाई' का सम्बोधन हो गया, पर मुनिजी ने तुरन्त ही मेरा ध्यान खींचकर, मुझसे कहा कि 'अहम् भिक्खु' इन शब्दों को सुनकर मेरे हृदयमें अपनी गलती के लिए दुःख हुआ था।"

इस प्रकार राव बहादुर जीने मुझे बताया था। इन दोनों घटनाओं के ऊपर विचार करते मैं इस अभिप्राय के ऊपर आयी थी कि, मुनिजी की ये सभी तैयारियाँ पूर्वभवकी ही होनी चाहिएँ। 'अहम् भिक्खु' ये शब्द, उनकी वर्तमान अवस्था की सावधानता को सूचित कर रहे थे।

बा. ब्र. विनोदकुमार मुनि को उनके सच्चे रूप में नहीं पहचान पाये, और मुनिवेश में उनके दर्शन भी न हो पाये, इस विषय का श्री दुर्लभजी भाई और अ. सौ. मणिबहन को अवर्णनीय दुःख रहा है। मैंने इस स्थल से आगे भी कहा है, और आज फिर से कहती हूँ कि, इस के लिए आर्तध्यान न की कोई ज़रूरत ही नहीं है। मुनि जी तो वीराणी कुटुम्ब

के एक 'भूषण' रूप ही चले गए। उनके विरह से केवल वीराणी कुटुम्ब को ही हानि हुई है, ऐसा नहीं है, उनके विरह से तो समस्त स्थानकवासी समाजने एक भावी महापुरुष को गँवाया है।

बा. ब्र. विनोदकुमार मुनि तो छोटे समय में अपने कार्य को सिद्ध कर गये। आज हम उनकी तिथि के अवसर पर तप, जप, नियम—जो कुछ बन सके, करके उन के गुणों का अनुसरण कर, मानवभव का सार्थक्य प्राप्त करें, यही हमारे लिए हितावह है।



व्याख्यान के अन्त में परिषद् में सभी भाइयों और बहनों ने अपनी शक्ति के अनुसार व्रत, पच्चक्खाण अंगीकार किए थे।



आज तिथी के दिन पर छत्तीस पौषध हुए थे।



॥ श्री ॥

नव दीक्षित संत आपने तो कर दिया कमाल
मरती हुई गायोंको मुनिवरने लिया संभाल
दुर्लभजी तात आपके मणि बेनके हो लाल
राजकोट के निवासी, कर दिया कमाल
जै जे विनोद, जै जै विनोद, जै ॥१॥
बचपनसे ही था आपको, प्रशस्त धर्मराग
थे विश्वसे विरक्त, हृदयमें था विराग

महावीर के चरणोंमें था, मुनिका अटल अनुराग
अपनाया संयम शुद्ध है, आदर्श मुनिका त्याग
जै जै विनोद, जै जै विनोद, जै ॥२॥

सिरधेय लाल, मान, कान, पारस मुनि प्यारे,
विनोद मुनिके संग, फलोदी में पधारे;
स्वीकृत हुआ पावस खुले बस भाग्य हमारे
लगते थे धर्मबागमें जिनधर्म के नारे
जै जै विनोद, जै जै विनोद, जै ॥३॥

विधी को न मंजूर था सुख सौभाग्य हमारा
उत्साह सब आनंद हो गया भंग सब सारा
ट्रेन दुर्घटनासे साधक स्वर्ग सिधारा
प्राणोंका खेल खेलकर गौवोंका उबारा
जै जै विनोद, जै जै विनोद जै ॥४॥

आदर्श गौ रक्षा का यह कैसा मान है
सुवर्ण अक्षरों में लिखने योग्य यह बलिदान है
जिन धर्म की मुनिने बढाई आज शान है
चिर शान्ति पाये मुनि "गुलाब" का यह ध्यान है
जै जै विनोद, जै जै विनोद जै ॥५॥

गुलाबचन्द गोलछा (कली)
फलोदी (राजस्थान)

स मा प्त

तार और तार का ज़वाब

PRUTHAVIRAJ MALU, KICHUN, —FALODI.
HAS VINODCHANDRA REACHED THERE. WIRE. CARE VINOD.
—PURANCHANDRA.

तार का भाषान्तर,

पृथ्वीराज मालु, खीचन, —फलोदी
विनोदचन्द्र वहाँ आये हैं ? तार से जवाब भेजें।

फलोदी से आया हुआ उत्तर

"VINOD" RAJKOT
REC. VINODBHAI ARRIVED SAFELY BECAME SAINT HIMSELF AT KHICHUN.
GAUTAMCHAND KHICHUN.

जवाब का भाषान्तर :—
"विनोद" राजकोट
तार मिला। विनोद भाई सही सलामत इधर आये हैं और उसने खीचन में स्वयमेव दीक्षा अंगीकार किया है।
गौतमचन्द खीचन.

उपर्युक्त प्रकार से तार, श्री विनोदकुमार के पिताजी को मिला। तार मिलते ही चिन्ता और वेदना मे अतिशय वृद्धि हो गई। और तर्कवितर्क उत्पन्न हुए। कोई भी मार्ग उन्हें दिखाई नहीं देता था। अतः उन्होंने अपने भाई श्री छगनलाल भाई को बुलाया। साथ ही साथ श्री केशवलाल भाई पारेख और श्री रा. ब. श्री मोहनलाल भाई को भी बुलाया। अब इस के सम्बन्ध में किये जाने वाले कार्य की विचारणा का आरंभ किया गया। प्रथम तो यह निश्चित हुआ कि ये तीनों आदमी साथ मिलकर, श्री विनोदकुमार के पिताजी और माताजी मणिबहन को साथ लेकर वहाँ जाएँ। किन्तु भाग्यरचना कोई निराली ही थी। कुछ और ही घटना घटनेवाली थी। अतः उस विचार का परिवर्तन किया गया; क्यों-

अगर सब एक साथ वहाँ जायँ, और श्री विनोदकुमार न मानें ? इस से दो गुटों में जाना ही उचित समझा गया ! श्री नोदकुमार के पिताजी सहमत हो गए ! और इस समय अगर न मानें, तो पिताजी की यह प्रतीति थी कि, किसी भी प्रकार दूसरी बार, श्री विनोदकुमार को राजकोट वापिस ले आएँगे। र्म की विचित्र गति थी, और मातापिता के कर्मों में अब इस क में श्री विनोदकुमार का मुख देखना नसीब नहीं था, अतः ़ घटना घटी।) श्री विनोदकुमार की माताजी की तो बहुत ़छा थी; पर अत्यन्त मोह के आवेश में श्री विनोदकुमार के ताजी श्री दुर्लभजी भाई को वह बात मंज़ूर न थी; क्यों कि श्री नोदकुमार को माताजी का करुण हृदय अगर दीक्षा की ाज्ञा दे दे तो ?

निश्चित किये गये अनुसार श्री रा. ब. एम. पी. साहब श्री शवलाल भाई पारेख और पण्डित श्री पूर्णचन्द्रजी डक ये तीन ादमी, उसी दिन रात की गाड़ी में यानी ता. २८-५-५७ के ज़ रवाना हुए। ता. ३०-५-'५७ की सुबह में फलोदी स्टेशन र पहुँचे। बैलगाड़ी में बैठकर वे खीचन पहुँचे। वहाँ स्थिवर नि श्री शिरोमलजी महाराज, पू. पण्डित रत्न शास्त्रविशारद श्री मथमलजी महाराज आदि ठाणा ८ और पू. तपस्वीजी महाराज ी लालचन्दजी महाराज आदि ठाणा ४ विराजमान थे।

खीचन और मुनिमहाराजों की स्थिति का वर्णन !

खीचन, राजस्थान में जोधपुर जंकशन के बाद, जेसलमीर ़ रण की ओर के प्रदेश में आया हुआ है। इस प्रदेश में ़ड़ी धूप पड़ती है। सारे वर्ष में केवल तीन से चार ईंच वर्षा ोती है। खीचन से जो रेल्वे है, उसका अन्तिम स्टेशन पोकरण' है। और पोकरण के बाद पाकिस्तान की सीमा आती है।

सख्त गर्मी की वजह से इस क्षेत्र में सब्जीतरकारी होती ही नहीं, और मिल भी नहीं सकती। श्रीमन्त वर्ग बाहरसे शाक मँगवाकर खाते हैं। इस प्रकार की कमी के कारण से वहां के श्रावक भाई शाक आदि बहुत कम खाते हैं। वे रोटी के साथ दाल बनाते हैं, और नाममात्र के शाकादि पदार्थ कभी कभी आ जाते हैं। सामान्य रीति से सुखाई हुई तरकारी काम में लाई जाती है।

परिषह को सहन करने की क्षमतावाले मुनि जन ही इस क्षेत्र का स्पर्श कर सकने में शक्तिशाली होते हैं। गर्मी भी इतनी सख्त होती है कि सुबह के दस बजे तक साधुओं को 'गोचरी' कर लेनी पड़ती है। क्यों कि सभी जगह रेत की वजह से रास्ते पर पैर रखना मुश्किल हो जाता है। इतनी सख्त धूप अंगारों की याद दिलाती है।

खीचन के श्रावक बहुत श्रद्धावान हैं। विवेकशील और धर्मप्रेमी भी अगाधरूप से हैं। पूजनीय साधु-साध्वियों की उनकी भक्ति कुछ और ही प्रकार की अनूठी है।

यहां विराजित पू. श्री समर्थमलजी महाराज आदि ठाणा ८, और पूजनीय महासतियाँ आदि ठाणा १४ से १६ विराजित हैं। और भी पू. श्रीलालचन्द्रजी आदि ठाणा ५-इस प्रकार इस समय साधु-साध्वियों की कुल संख्या २८ से ३० तक थी।

पू. श्री समर्थमलजी महाराज।

श्री श्रमण भगवन्त महाराज के शासन को, ऐसे विषम काल में सुशोभित करनेवाले ये महर्षि समर्थमलजी महाराज, शास्त्रों के पूरे तज्ञ हैं। वे बहुत नियमपालक हैं। सूक्ष्मबुद्धि के संयम के स्वरूप को बनाकर ऐसे वीरान और तकलीफ़वाले प्रदेश में वे अपने संयम की रक्षा कर रहे हैं। दर्शन करने-

वाले को यह बात पूर्णतया प्रतीत होती है, और शुद्ध साधु के दर्शन से लोग पवित्र बनते है आज अठाईस से तीस वर्ष हुए, ऐसे कठिन (परिषह सहन करने पड़े ऐसे) क्षेत्र में, वे सेवा के ध्येय से विचरण कर रहे हैं। प्रथम तो वे अपने गुरुदेव की बीमारी की वजह से इस क्षेत्र में रहे। गुरुदेव काल-धर्म को प्राप्त हुए, और गुरुभाई वृद्ध थे। उन की सेवा तो करनी ही चाहिए। शुद्ध अन्तःकरण से उन्होंने गुरुदेव की प्रथम सेवा की, और आजतक उसी शुद्ध अन्तःकरण से गुरु-भाई की सेवा कर रहे हैं। और संयम को कठिन कसौटी के बीच, भगवान की आज्ञा में रहकर निभाया है।

साधुओं का निवासस्थान।

जिस स्थल में यह मुनिसम्प्रदाय निवास कर रहा है, उसके ऊपर की छत लोहे के पतरों की ही है। वहाँ की गर्मी के विषयमें तो आगे बताया गया है। ऐसे गरम प्रदेश में पतरे की छत के नीचे रहना कितना कठिन होगा, पाठक ही उस का विचार कर सकेंगे। लेखक को तो मालूम होता है कि असह्य गर्मी में इन मुनियों ने अपना निवास स्थान रखा है। ऐसे मुनियों का नाम-गोत्र भी कदाचित् हमारे कानों में शब्द रूप से आ जाय, तो भी आत्मा का निस्तारण हो सकता है। इस विधान में द्वादशांगशास्त्र की साक्षी है। ऐसे मुनियों के दर्शन, अगर शुद्ध भाव से किये जायँ, तो कितना लाभ हो सकता है? कदाचित् ऐसे निर्ग्रन्थों के व्याख्यानरूप से वाणीलाभ मिले, तो भी आत्मा का परमकल्याण हो सकता है, तब फिर संयम की उत्कृष्ट आकांक्षावाले महामुनि श्री विनोदकुमार की आत्माने ऐसे महामुनि के दर्शन कर स्वयमेव दीक्षा ग्रहण कर कितना लाभ प्राप्त किया होगा?

श्री विनोदकुमार की खोज में पिताजीने भेजा हुआ मिशन, इस पवित्र धर्मस्थान में प्रविष्ट होता है। स्थान तो निरवद्य ही था। साधुओं के लिये बनाया ही नहीं गया था।

स्थानक की निरवद्यता।

खीचन के लोग सुखी हैं। इस सारे मकान को वे बदल सकते हैं। इन पूजनीय मुनि की ओर उनका पूज्यभाव भी असामान्य है। अत्यन्त मान की दृष्टि से वे समर्थमलजी की ओर देखते हैं। अगर वे चाहें तो विशाल उपाश्रय का निर्माण करना उनके लिए साधारण वात है। खीचन के श्रावकोंने पूज्यश्री से अनेकबार अनुरोध किया; पर साधुओं के लिए भवन के निर्माण की याचना का पूज्यश्रीने अनादर किया। इतना ही नहीं, पर जिस मकान में गुरुदेव विराजित हैं, उस मकान में अपने कारण से किसी भी प्रकार के परिवर्तन से जन्य 'आरम्भ-समारम्भ' वन जाय-इस लिये याचना स्वीकृत नहीं की गई। मकान पूर्वस्थिति में ही यथास्थित है। इतने वर्षों में धुलाया भी नहीं गया, और किसी भी प्रकार का परिवर्तन भी उन्होंने नहीं करने दिया। धन्य है इन महामुनिको कि जिन को शास्त्रनिर्दिष्ट अलंकार ही अच्छे लगते हैं। वे अलंकार सुबह-शाम के श्रावक के प्रतिक्रमण में शामिल हैं। 'खमत खामणा' (क्षमापना)के चतुर्थ 'खामणा' (क्षमापना) में वे आते हैं। उसका आराधन कर, लेखक आत्मनिस्तारणा चाहता है। स्ततिपाठ नीचे दिया जा रहा है।

"चतुर्थ खामणा (क्षमापना) श्री गणधरजी; आचार्यजी, उपाध्यायजी से करता हूं। गणधरजी बावन गुणों से युक्त हैं, आचार्यजी छत्तीस गुणों से युक्त हैं और उपाध्यायजी पचीस गुणों से युक्त हैं।" इस न्याय से लेखक अपनी

आत्मा में श्री समर्थमलजी महाराज को आचार्य के नाते स्थापित करता है, और प्रार्थना करता है कि, "आप खीचन में हैं मैं सौराष्ट्र में हूँ यहीं से आपको ग्रन्थन्याय से लेखक की स्थिति में मैं अपने धर्मगुरु के नाते स्वीकृत कर रहा हूँ। आप मेरे धर्माचार्य हैं; आप उपदेश के परमदाता, महापुरुष, धर्मराज, गीतार्थ, बहूसूत्री, सूत्रसिद्धान्तों के पारगामी, तरण-तारण, तारिणीसमान, यात्रा के लिए बनाए गए जहाज़ के समान, कल्पवृक्षोपम, जिनशासनभूषण, धर्मनायक, श्री धर्मसिंहजी महाराज की पाटानुपाट में हुए आचार्य श्री १००८ ज्ञानचन्द्रजी महाराज के परिवार को विभूषित करनेवाले श्री संघ के मुख्य, श्रीसंघनायक, हैं। आप के इन सभी अलंकारों की मैं अपनी आत्मा में जागृति कर के आपकी पर्य्युपासना करता हूँ। मेरा आजका दिन धन्य बन गया! दिनोङ्क ४-२'५८"।

श्री विनोदकुमार के पिताजी दुर्लभजीभाई के द्वारा भेजे गए मिशन के भी धन्यभाग्य हैं, कि जिस मिशनने विनोदकुमार की खोज के निमित्त से भी ऐसे उज्ज्वल महाप्रतापी साधु-समूह के दर्शन किये।

रा. बा. श्री एम. पी. साहब, श्री केशवलाल भाई पारेख और पं. श्री पूर्णचन्द्रजी डकने, समर्थमलजी आदि सभी मुनियों को यथाविधि वन्दना की। बाद में श्री विनोदमुनि के साथ बातचीत शुरू हुई।

पूछने पर विनोदकुमारने उत्तर दिया। उन्होंने श्री केशव-लाल भाई पारेख से कहा कि, "मैंने दीक्षा का अंगीकार कर लिया है। उसमें अब किसी भी प्रकार का परिवर्तन शक्य नहीं है। आप हमारे वीराणी कुटुम्ब के हितैषी हैं। अगर आप सही रूपसे हितैषी हैं तो आपको चाहिए कि आप मेरी माताजी और पिताजी को समझा दें, और मेरी बाद में

होनेवाली बड़ी दीक्षा के लिए अनुमति दिलवा दें, और वह भी एक सप्ताह के भीतर के समय में ही। इतना ही नहीं पर 'सवी जीव करूँ शासन रसी' की भावना में भी मुझे अनुमति मिल जाय। वह भावना और कोई नहीं है, पर मैं चाहता हूँ कि मेरी माताजी और पिताजी मेरे साथ ही दीक्षा का अंगीकार कर लें। आज दिन तक मेरे ऊपर किये गये उनके उपकारों के फलों मे यही परमफल हो सकता है। आगम-सम्मत भी यही मार्ग है।

और हाँ, आप भी तो बहुत समय से निवृत्त होने की बातें कहते आये हैं! निवृत्ति के लिए यह स्थल सचमुच सुन्दर है। पूज्य ज्ञानी महाराजजी का भी परमसंयोग है, यहाँ रह कर निवृत्त बन जाइए और ज्ञान का लाभ ले लीजिए। मैं आप से भी यही कहता हूँ।

ऐसे दृढ़ उत्तर से उसी समय, विनोदकुमार को वापिस ले जानेकी मिशन की कल्पना के ऊपर पानी फिर गया। उपर्युक्त चर्चा के बाद, पूज्जनीय मुनि महाराजों ने बताया कि, साधुधर्म के नियमों के अनुसार श्री विनोदमुनि के साथ आहार-पानी और आवश्यकता पड़ने पर "वैयावच्च" किया जा सकता है। उसके लिए गुरुजनों की आज्ञा की आवश्यकता है। पू. मुनि महाराजों के कथनानुसार और विचार करने के बाद मिशन को वह सही मालूम पड़ा। वह आवश्यक प्रतीत होने पर, पू. श्री लालचन्द्रजी महाराज से, विनोदमुनि के साथ साधुव्यवहार रखने का कहकर सब ता. ३१-५-'५७ की रात को वहाँ से रवाना होकर, ता. २-६-'५७ की सुबह को वापिस आये। परिषहक्षेत्र का अनुभव सभीने किया। आकर श्री विनोदकुमार के पिताजी को इन सब बातों से ज्ञात कराया गया।